Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

COMPLIMENTARY
FOR ASHRAM LIBRARY

Ananda Vārtā

श्री श्री आनन्दमयी चैरिटेबल सोसाइटी
ॐ माँ
मातृ शरणं

हिन्दी

वर्ष २८ जनवरी, १९८१ संख्या १

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आनन्द वार्ता

वर्ष २८] जनवरी १९८१ [संख्या १

परामर्श परिषद

आचार्य पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
पण्डित करुणापति त्रिपाठी
डॉ० ज्ञानवती त्रिवेदी पी-एच० डी०
डॉ० हरवंश लाल शर्मा पी-एच० डी०, डी० लिट्०
ब्रह्मचारी भास्करानन्द
ब्रह्मचारी निर्मलानन्द एम० ए०, शास्त्री

संपादक

डॉ० मुनीश्वर झा डी० लिट्० (पेरिस), एम० ए०, बी० एल०, साहित्याचार्य

वार्षिक चन्दा की दरें

भारत में—	१२ रुपये		(डाक व्यय सहित)
विदेशों में—			
अमेरिका—	४ डालर (सी० मेल)		,,
,,	८ डालर (हवाई डाक)	५०.०० रुपये	,,
अन्य देशों में—	२ पौण्ड (सी० मेल)		,,
	३.५० पौण्ड (हवाई डाक)	४०.०० रुपये	,,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ग्राहकों के लिए सूचनाएँ

- 'आनन्द वार्ता' त्रैमासिक पत्रिका है जो हिन्दी, बंगला और अंग्रेजी में अलग-अलग प्रकाशित होती है।
- प्रत्येक संस्करण का वर्ष जनवरी से प्रारम्भ होता है। वार्षिक चन्दा अग्रिम १५ दिसम्बर तक प्राप्त होने पर नये वर्ष की सूची में ग्राहकों के नाम दर्ज कर लिये जाते हैं।
- कृपया वार्षिक चन्दा निम्न पते पर भेजने का कष्ट करें—श्री मैनेजर, दी पब्लिकेशन डिविजन, श्री श्री आनन्दमयी चैरिटेबल सोसायटी, ३१ एजरा मेन्सन, १० गवर्नमेण्ट प्लेस (ईस्ट), कलकत्ता–७०००६९।
- डाक विभाग की गड़बड़ी से अगर कोई अंक निर्धारित समय पर न प्राप्त हो तो कृपया कार्यालय को सूचित करें।
- यदि आप अपने पते में किसी प्रकार का परिवर्तन करना चाहते हैं तो अविलम्ब सूचना दें।
- वार्षिक चन्दा निर्धारित समय पर प्राप्त होने पर कार्यालय को सुभीता होती है। अगर आप किसी कारण अगले वर्ष ग्राहक नहीं रहना चाहते तो इसकी सूचना अवश्य दें।
- पत्रिका वी० पी० नहीं भेजी जाती।

श्री श्री आनन्दमयी चैरिटेबल सोसायटी, कलकत्ता की ओर से डॉ० प्रफुल्लचन्द्र दत्त, पी-एच० डी० द्वारा, ३१ एजरा मेन्सन, १० गवर्नमेण्ट प्लेस, कलकत्ता–६९ से प्रकाशित तथा श्री महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी–१ में मुद्रित।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विषय-सूची

१. मातृ-वाणी १

२. मातृ-सत्संग—श्री श्री स्वामी भागवतानन्द गिरि ३

३. आरोप साधन—महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज एम० ए०, डी० लिट्० ६

४. उपनिषद विद्या भारतीय जीवन दर्शन—डॉ० मुनीश्वर झा १३

५. क्रियायोग साधना का रहस्य—डॉ० शान्तिप्रसाद आत्रेय १८

६. श्री श्री माँ आनन्दमयी—श्री चैतन्यवेण दिपेटिया, एम० ए० २५

७. युग निर्माण कब होगा ?—श्री जयप्रकाश वार्ष्णेय २८

८. संयम सप्ताह महाव्रत—कुरुक्षेत्र—डॉ० प्रेमलता श्रीवास्तव २९

९. माँ के श्री चरणों में—श्री जयनाथ कौल ३९

१०. माँ—श्री अमृतपुत्र ४०

११. दर्शन समीक्षा—श्री हरिओम् सिंह ४१

१२. एक दर्शन की स्वीकृति—श्री एस० एन० सोपारी ४९

१३. योग और आद्याशक्ति—कुमारी श्वेताम्बरी सहगल ५२

१४. गुरुप्रिया दीदी के महाप्रयाण में—कुमारी गीता बनर्जी ५८

१५. दीदी गुरुप्रिया—श्री कान्तानन्द ७०

१६. परम आदरणीया दीदी के प्रति श्रद्धांजलि —डॉ० गुणिता पी-एच० डी० ७५

१७. वार्षिक सूची वर्ष २७, अंक १ से ४ .... ८३

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भजन करो रे

माँ—भजन करो रे ! ....प्रेम की पुतलिया
भजन करो........रे भजन करो !

कौन तुम्हारा बहन-भानजा ? कौन तुम्हारी माता....?
कौन तुम्हारे संग चलेगा ? कौन बने गुरु माता
भजन करो रे ।

यमुना हमारी बहन-भानजे, गंगा हमारी माता ।
पुण्य हमारे साथ चलेगा, धर्म बने गुरु माता
भजन करो रे !

कौन तुम्हारा देवर लगत हैं ? कौन तुम्हारा जेठ ?
कौन तुम्हारा ननद लगत हैं ? चमके चारों देश ।
भजन करो रे !

चन्द्र हमारे देवर लगत हैं, सूर्य हमारे जेठ ।
बिजली हमारी ननद लगत हैं, चमकें चारों देश
भजन करो रे !

कौन तुम्हारे सखा लगत हैं ? कौन तुम्हारे साथी ?
कौन तुम्हारे पिता लगत हैं ? कौन तुम्हारे पति ?
भजन करो रे !

सत्य हमारे सखा लगत हैं, धीरज मेरा साथी ।
पिता हमारा परम पिता, और आत्मा मेरा पति....
भजन करो रे !

भजन करो रे........काठ की पुतलियाँ
प्रेम की पुतलियाँ
भजन करो रे !

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

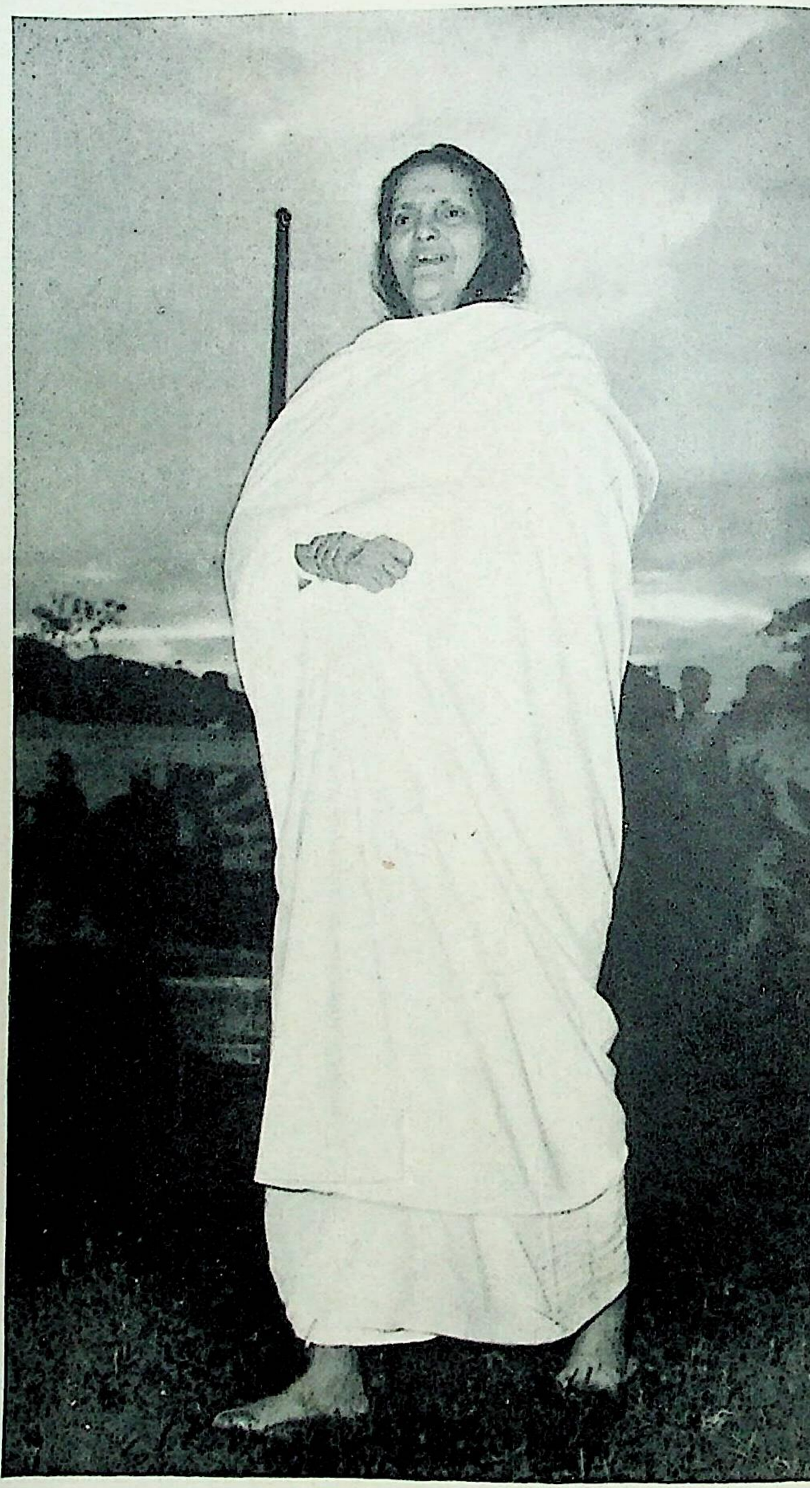

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मातृ वाणी

आवरण नष्ट करने के लिए कर्म का प्रयोजन है। तुमको जो बुद्धि दी है, उसी से तुम काम करो। उनकी कृपा अहैतुकी है। क्यों कृपा नहीं कर रहे, यह उनकी मौज है। अपना हो तो—जो इच्छा करे। जहाँ हेतु रहता हे, वहाँ प्राप्ति की इच्छा और फल भोग। मैंने किया है इसलिए फल भोग रहे हैं। किसका फल? अपनी क्रिया—अपना फल। भगवान् अपने हैं, एक आत्मा। पहले यह बोध नहीं आता, इसी से प्रश्न उठता है। जहाँ खड़े हो, वहाँ से ऐसा ही दिखाई देता है।

*   *   *

जितना भगवत्-अनुराग होता है, उतना ही विषय के प्रति वैराग्य आता है। भगवान् से मन लगाने का अर्थ है—भगवान् के प्रति आकर्षित होना। और वैराग्य होने का अर्थ है—विषय के प्रति वैराग्य होना। भगवान् के प्रति अनुराग होना और विषय के प्रति वैराग्य का आना एक साथ होता है। त्याग हो जाता है। त्याग करने का प्रयोजन नहीं होता। यही त्याग ही असली त्याग है। तुम लोग तो परमानन्द को त्याग कर चुके हो। तुम्हीं लोग असली त्यागी हो। महान् को त्याग करके तुम सब महात्यागी बने हो।

*   *   *

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जो नित्य सत्य है, उसके प्रकाश के लिए सभी को चेष्टा करनी चाहिए। अपने घर जाने की चेष्टा करो। दूसरे के घर में, दूसरे के साथ रहने से दुःख द्वन्द्व—माने दो लेकर अन्ध। अन्धकार माने अज्ञान।

* * *

भगवान् जो कराते हैं, वही करना है। जप-ध्यान और पूजन में मन न लगने पर भी नियमित रूप से उसे करना है। अभ्यास के लिए ताकि अभ्यास योग में परिणत हो जाय। भक्ति और श्रद्धा की ओर जागृति तो चाहिए। फिलहाल अपने पैर पर अपेक्षा है। जो कुछ करना है, भगवान् उसे कर देते हैं, यह याद रखना है। इच्छा-अनिच्छा में नित्य प्रार्थना चाहिए।

* * *

भगवान् का नाम करते जाना। ऐसी प्रार्थना—"हे भगवन्, तुम दीक्षा के रूप में प्रकाशित हो।" सर्वदा नाम में मग्न होकर उसमें पिघल जाने को अविराम चेष्टा है। भगवान् के लिए भगवान् का नाम करना—यहाँ याद रखना है।

■

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मातृ सत्संग

—श्री श्री स्वामी भागवतानन्द गिरि—

२४ फरवरी, १९४८ ई०

प्रश्न : व्यवहार में भी सत्य-पालन होना चाहिए, क्या ?

श्री माँ : अवश्य। सत्य-पालन करना चाहिए। प्राण-रक्षा के लिए, दूसरों को बचाने के लिए, कोई-कोई असत्य बोल सकता है। इस शरीर का यही कहना है कि किसी भी संयोग पर असत्य व्यवहार कभी नहीं करना चाहिए।

प्रश्न : पूज्य गांधीजी का विचार रहा है कि ऐसे प्रसंग में किसी की प्राण-रक्षा के लिए चुप रहना चाहिए यानी ऐसा कहें कि मैं जानता हूँ, लेकिन बोलूँगा नहीं।

श्री माँ : सत्य बोलना माने सत्य पाना। सत्य की सहायता सत्य ही करता है। सत्य बोलने से सत्य ही पकड़ लेता है जैसे अग्नि को स्पर्श करने से ताप लगता है। अग्नि का स्वभाव है—ताप देना। हर समय सत्य बोलने से, सारा व्यवहार सत्यमय हो जाता है।

प्रश्न : एक लड़का स्कूल में जा रहा है, लेकिन स्कूल में पढ़ता नहीं है। दिन भर खेलता रहता है। स्कूल भेजा गया, सत्य का पालन हुआ क्या ?

श्री माँ : यह सत्य नहीं है। निष्ठा एकनिष्ठ होना चाहिए। सत्यनिष्ठा होना चाहिए।

प्रश्न : साधना के लिए मांस छोड़ना क्या आवश्यक है ?

श्री माँ : अपना गुरुदेव जैसा आदेश दें, वैसा करना चाहिए। गुरु-दीक्षा के समय श्री गुरुजी ने कुछ कहा कि नहीं मांस-मछली छोड़ना या नहीं छोड़ना। साधना करने से अपने आप पता लग

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जायगा। परम कृपालुजी भगवान् का नाम ले लो, इससे अपने आप छूट जायगा। सुना है कि श्री परम पूज्य भोला गिरि महाराज ने आदेश किया था कि मांस-मछली मत खाओ। लेकिन कोई चोरी करके खा लेता रहा। किसी-किसी के मन में रसगुल्ला खाने की तीव्र इच्छा होती है, इसलिए मन को अपना दोस्त बना लो कि मैं कल रसगुल्ला खाऊँगा, आज नहीं। सात दिन के बाद लूँगा। यही सच बात है कि अपना गुरुदेव जो आदेश दें, उसी तरह करना चाहिए। जो वस्तु खाने से भगवान् के रास्ते में विघ्न आता है, उसको छोड़ना चाहिए। जो खाने से सात्त्विक गुण उत्पन्न हो, ऐसा खाना चाहिए। पर शरीर ने कुछ लिया या नहीं, यह बात नहीं है। मांस-मछली क्या चीज है। यह शरीर तो पागल है। घी-दूध, मलाई खाया नहीं जाता। इसमें क्या बीज है? अपने-अपने शरीर की चर्बी, मांस कैसे खाऊँ? सभी लोग मलाई आनन्द से खाते हैं। लहसून-प्याज नहीं खाते। छोटा बच्चा जन्म से दूध पीता है। गंध और सुगंध में कोई अन्तर नहीं है। सभी गंधों में कौन है? भगवान् ही हैं। सुगंध से प्रेम और दुर्गंध से घृणा। असल में सुगंध और दुर्गंध एक रूप ही है। पूर्ण बालक की बात करो। यह शरीर भी छोटी बच्ची है। दूध के रूप में कौन है? वही है।

प्रश्न : बँगला देश में मांस-मछली का भोग भी लगता है। लेकिन वृन्दावन में उनका भोग नहीं लगता। यह सब देश-काल भेद से होता है।

श्री माँ : गौ माता तो माता है। सबको दूध देती है।

प्रश्न : सुना है कि बछड़े को पूरा दूध नहीं पीने देती?

श्री माँ : बछड़े को भोजन न देना तो यह ठीक नहीं है। सुना है कि गाय अपने बच्चे के लिए दूध चुराकर रखती है। इसलिए गोमाता चोर नहीं है। अपने बच्चे को उसका हिस्सा ही देती हैं।

माँ ने मातृभक्तों की विशेष प्रार्थना पर सुन्दर कीर्त्तन किया। हे भगवान्, हे भगवान्, प्रेम भगवान्, श्रेय भगवान्, प्रेय भगवान्, मंगलमय भगवान्, अनन्तमय भगवान्।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२५ फरवरी, सन् १९४८, बसन्त पंचमी, नयी दिल्ली

आज भक्तों की इच्छा से नाम जप की व्यवस्था हुई है। सुबह ७ बजे से कीर्त्तन शुरू हो गया है। "श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द, हरे कृष्ण हरे राम, श्रीराधे गोविन्द" के मधुर स्वर में कीर्त्तन हो रहा है। मण्डप में सुन्दर कीर्त्तन-मंच तैयार हुआ है। मंच के चारों ओर अशोक के पल्लवों से सजावट किया गया है। चारों ओर बिजली का प्रकाश है। ऊपर परम कृपामयी माँ कीर्त्तन-मंच के पास बैठ गयी हैं। परम कृपामयी माँ को पास देखकर कीर्त्तन काफी जम गया है। भक्त लोग भाव विभोर होकर कीर्त्तन कर रहे हैं। आत्म विभोर होकर नाच रहे हैं। गरीब-अमीर सभी लोग कीर्तन कर रहे हैं। शाम को माँ भी अपने सुन्दर भाव में कीर्तन में नाचने लग गयीं। परम कृपामयी का कीर्तन सुन्दर भाव के कारण जम गया है। परम कृपामयी माँ कहने लगीं—कीर्त्तन करो—कीर्त्तन करो रे। श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द हरे राम, हरे कृष्ण, श्री राधे गोविन्द।"

परम कृपामयी कीर्त्तन कर रही हैं, इसलिए कीर्त्तन-मण्डप पूर्ण रूप से भर गया है। श्री माँ का मधुर कण्ठ स्वर में कीर्त्तन सुनकर अनेक लोग आ गये हैं। अपना-अपना काम छोड़कर कीर्त्तन में कीर्त्तन कर रहे हैं। श्री कृष्ण की वंशी सुनकर जिस प्रकार गोपियाँ अपना-अपना काम छोड़कर भगवान् के पास चली आती थीं, ठीक उसी प्रकार परम कृपामयी माँ का मधुर कण्ठ सुनकर सभी लोग मन्त्र मुग्ध हो उठते हैं।

कीर्त्तन समाप्त होने पर आज सरस्वती पूजन हुआ। सभी लोगों ने मंत्र और पुष्पांजलि श्री श्री माँ सरस्वती को चढ़ायी। भक्तों के लिए प्रसाद की व्यवस्था हुई है। सब लोग प्रसाद पाने बाद श्री श्री माँ का दर्शन करने के कारण बड़ा आनन्द अनुभव करते रहे।

■

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आरोप साधन

—महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ कविराज, एम. ए. डी. लिट्.—

[पूर्वानुवृत्ति]

(४)

मन, वायु और दृष्टि स्थिर होने की बात पहले कही गई है। जब यह स्थिति प्राप्त हो जाय तभी आगे की साधनाओं का अनुष्ठान करना चाहिए, उससे पहले नहीं। उसका नाम 'लक्ष्यवेध' है। लक्ष्य किसे कहते हैं साधक के हृदय में स्थित गुरुप्रदत्त इष्टरूप ही लक्ष्य है उक्त अन्तःकरण में स्थित रूप को दोनों नेत्रों के बाहर खींच लाना चाहिए एवं सामने किसी स्थान में स्थापित करना चाहिये। जो हृदयाकाश में गुप्त रूप से रखा था उसे बाहर निकाल कर बाह्याकाश में प्रकट रूप से स्थापित करना चाहिये। हृदयाकाश ❀ और बाह्याकाश की जो सन्धि है, वही लक्ष्य स्थापन का उपयुक्त स्थान या केन्द्र है। इस सम्बन्ध में स्पष्टरूप से अधिक प्रकाश डालकर रहस्य व्यक्त करना मुझे उचित प्रतीत नहीं हुआ। सन्धि के उस पार स्थिर वायु है और सन्धि के इस पार चञ्चल वायु है। चञ्चल वायु की सीमा के बाहर स्थिर वायु की प्रान्त भूमि में लक्ष्य की स्थापना करनी चाहिये। साथ साथ पूर्वोक्त प्रणाली से भौहों के बीच में स्थिर हुए मन को भी उस जगह बैठाना चाहिये। निमेष त्याग करने का अभ्यास पहले ही सिद्ध हो चुका है, इसलिए इस बार दृष्टि को निमेष त्यागपूर्वक पूर्वोक्त लक्ष्य स्थान पर लगाना चाहिये। इससे मन, नेत्र और लक्ष्य एकीभूत होकर प्रकाशित होंगे। इसका नाम लक्ष्यवेध † है।

❀ यह योगियों के परिचित लक्ष्यत्रय के अन्तर्गत बहिर्लक्ष्य का एक प्रकार मात्र है।

† मुण्डकोपनिषत् में दूसरे प्रकार से लक्ष्यवेध का विवरण दिखाई देता है। देह साधक का ब्रह्म ही लक्ष्य है, आत्मा ही शर है एवं प्रणव ही धनुष है। प्रणव से ही ब्रह्म में आत्मा को प्रविष्ट कराना पड़ता है। लक्ष्यवेध का दृष्टान्त सूतसंहिताकार ने इस प्रकार दर्शाया है—

"लक्ष्यं सर्वगतं चैव परोक्षं सर्वतो मुखम्।
वेद्धा सर्वगतश्चैव विद्धं लक्ष्यं न संशयः॥"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लक्ष्यवेध के समय मन में जैसे अन्य भाव न रहे एवं दृष्टि में कुछ न भासे इसके लिए सावधान रहने की जरूरत है।

लक्ष्यवेध के भली भाँति निष्पन्न हो जाने पर साधक के हृदय में स्थित रूप बाहर दृष्टि के सामने प्रकट हो जाता है। रूप के दृष्टिगोचर होते ही उसके प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यङ्गों का दर्शन करना आवश्यक है। साधकसमाज में इसके लिए एक विशेष प्रक्रिया का विधान है। पहले उस बाह्याकाश में स्थित मूर्ति के पैर के तलवे से क्रमशः ऊपर के प्रत्येक अङ्ग पर साग्रह दृष्टि लगानी चाहिये। इस प्रकार मस्तक के ऊपर केशों के अग्र तक निरीक्षण करना चाहिये इसका नाम अधः ऊर्ध्वक्रम है। इसके बाद ऊपर से नीचे की ओर अर्थात् केशों के अग्रभाग से लेकर पैर के तलवे तक क्रमशः प्रत्येक अङ्ग के ऊपर दृष्टि लगानी पड़ती है। इस प्रकार एक बार अनुलोम से और एक बार विलोम से बार-बार अभ्यास करना आवश्यक है। नेत्रों की कोमल और सरल रूप से रक्षा करते हुए दृष्टि लगानी चाहिये। उद्देश्य यह कि बाहरी रूप के प्रत्येक अङ्ग जैसे दृष्टि के सामने निरन्तर भासते रहें। अभ्यास के समय क्रम का अवलम्बन कर एक अवयव के बाद दूसरे अवयव का निरीक्षण करना पड़ता, यह सात्य है। किन्तु भली भाँति अभ्यास हो जाने पर सभी अङ्ग एक साथ दृष्टिगोचर होते हैं, क्रमिक दर्शन की फिर आवश्यकता नहीं रहती है। यदि कभी किसी कारण से कोई अङ्ग दृष्टि के सामने न भासे तो उस अङ्ग पर पुनः दृष्टि डालनी चाहिये। जब तक सब अङ्गों का एक साथ भास न हो तब तक इसी तरह अभ्यास करते करते आगे बढ़ना चाहिये। इस रूपसन्धान कार्य में समय-असमय अथवा शुचि-अशुचि का कोई विचार नहीं है। इसे सदा ही करना चाहिये—सोते, बैठते, चलते, रुकते, सदा इसे करना चाहिये। किसी समय भी छोड़ना नहीं चाहिये।

दीर्घकाल के अभ्यास से बाहरी रूप के सब अङ्ग एक ही समय दृष्टि में भासेंगे। तब अखण्ड मण्डलाकार से सारा शरीर प्रकाशित होगा एवं शरीर प्राणयुक्त अर्थात् सजीव रूप से प्रतिभासित हो उठेगा। उस अवस्था में साधक के नयनों के साथ माध्य रूप के नयनों का सम्मिलन होगा। इस चार नयनों के सम्मिलन को ही शुभ दृष्टि समझना चाहिये। उस समय से साधक और साध्य या इष्ट दोनों के लिए दोनों में अस्थिरता अथवा चञ्चलता पैदा होती है। इष्ट जब तक प्राणमय न हो तब तक इस प्रकार चञ्चलता नहीं होती है। वास्तव में उपास्य मूर्ति में

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्राणप्रतिष्ठा होने पर वह ऐसा ही होता है। प्राणप्रतिष्ठा यदि न हुई तो मूर्ति केवल मूर्ति ही है, वह चाहे मिट्टी की हो, चाहे पत्थर की हो, चाहे लकड़ी की हो अथवा चाहे ज्योतिर्मय हो, उसमें कुछ आता जाता नहीं है। बाह्य रूप जब तक प्राणमय नहीं होता तब तक वह साधक की भावना के अनुसार अपना प्रभाव दिखाने में समर्थ नहीं होता है।

(६)

तदुपरान्त भाव का उदय होता है। साधक उस समय आनन्द में आत्मविस्मृत होकर अपने शरीर, मन और वचन को यहाँ तक कि अपने सर्वस्व अपने चौबीस तत्त्वों से बने शरीर को भी इष्ट के समर्पण करता है। एवं उस समय से उसकी शरण गहता है। उससे साधक उस सजीव इष्ट रूप को सदैव देखता है। वेद में प्रतिपादित है,—'सदा पश्यन्ति सूरयः।' यह कुछ अंशों में उसी के अनुरूप अवस्था है। जब तक रूप में प्राप्त प्रतिष्ठा के अनन्तर साधक के हृदय में भाव का जागरण नहीं होता है तब तक वह रूप भली भाँति चेतन रूप नहीं होता है एवं वह सदा दृष्टिगोचर भी नहीं होता है। कभी वह दृष्टिगोचर होता है फिर कभी दृष्टि से ओझल हो जाता है। सूर्य जिस प्रकार एक बार उदय होता एवं एक बार अस्त होता है, तदुपरान्त कुछ समय अदृष्ट रहने के बाद पुनर्वार उदय होता, वह रूप भी उस समय उदय-अस्तमय द्वन्द्व अवस्था में रहता है। शास्त्र में इस प्रकार का रूप शान्तोदित रूप कहाँ गया है। किन्तु साधक के हृदय में भाव के जाग उठने पर इस अवस्था में परिवर्तन हो जाता है। उस समय आविर्भूत हुआ रूप चिन्मय है इसलिए फिर वह तिरोहित नहीं होता। वास्तव में उस समय उस रूप का न उदय होता है और न अस्त ही होता है—शास्त्रीय परिभाषा में उसका नाम नित्योदित रूप है।

रात्रि में, दिन में, निद्रा में, जागरण में, शयन में, भोजन में, सब समयों में, आसन पर बैठ कर, यहाँ तक कि मार्ग में चलते-चलते, साधक को सदा अपने नित्य संगी इष्ट के दर्शन प्राप्त होते हैं। उस समय साध्य के साथ साधक का विच्छेद सदा के लिए निवृत्त हो जाता है। संसार के सुख-दुःख और शोक-रोगों की यन्त्रणाएँ साधक का फिर कदापि स्पर्श नहीं करती है—आघात पहुँचाना तो दूर की बात है। क्योंकि उस समय साधक का मन सदा साध्य वस्तु में संलग्न रहता है, पहले की तरह बाहर ही बाहर घूम कर भटकता नहीं है। जगत् का कोई भी ऐश्वर्य-सुख अथवा मान सम्मान साधक को आकृष्ट नहीं कर सकते।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उस अवस्था में एक अपूर्व आनन्द का आस्वादन. सदा के लिए साधक को अपने में डुबाये रखता है। वास्तव में सारी सृष्टि में उस आनन्द की तुलना किसी से नहीं की जा सकती। शोक, मोह, जरा, मृत्यु और भूख-प्यास फिर साधक के ऊपर आक्रमण नहीं कर सकती। उस समय क्षोभ अथवा भय या सब तरह के विकार साधक के हृदय से हट जाते हैं—वास्तव में सभी वृत्तियाँ उसकी रहती हैं, परन्तु उसकी अधीन होकर दासरूप में। साधक के ऊपर उनका किसी प्रकार का प्रभुत्व नहीं रहता। साधक यदि चाहे तो उन्हें जगा कर उनके साथ क्रीड़ा कर सकता है।

उस समय भक्त इच्छामय और स्वतन्त्र है और नित्य भगवत्संग का संगी है एवं है उनके भाव में सराबोर। उस समय उसमें अतुल शक्ति का विकास होता है। यद्यपि वह प्रकट नहीं होती है तथापि साधक अपने को उस समय भगवान् के तुल्य सर्वशक्तिमान् समझता है। नियति की परतन्त्रता अथवा अन्य किसी खण्ड शक्ति की अधीनता उसमें फिर नहीं रहती। उस समय भक्त भगवान् के साथ समता से स्थित होता है।

(७)

किन्तु यद्यपि भक्त भगवान् की समता प्राप्त करता है तथापि भक्त विशुद्ध अभिमान से 'मैं दास हूँ' यों अपने में दासत्व का अभिमान करता है 'मैं प्रभु हूँ' यों प्रभुत्व का अभिमान नहीं करता है। उस समय भक्त की आत्मा और भगवान् की आत्मा एक ही अभिन्न आत्मस्वरूप से प्रकाशित होती है। फिर भी भक्त व्यवहारभूमि में आरोपित भेद अथवा अहार्यभेद मानकर दास-प्रभुभाव अक्षुण्ण रखता है। उस समय साधक एक अद्वितीय नित्यानन्दमय वस्तु है, इसीलिए अपने को सब रसों का का आश्रय जान सकता है। उस अवस्था में विशुद्ध अद्वैत-भूमि में स्थिति होती है, इसलिए भक्त इच्छा होने पर अपना आस्वाद स्वयं ले सकता है। यदि इच्छा नहीं तो जैसा हो वैसा ही रहता है। इच्छा की दिशा नित्य है और इच्छा न करने की दिशा भी नित्य है उस समय दोनों की ही समानरूप से अवस्थिति रहती है।

यदि इच्छा का उदय हुआ तो इच्छा के साथ ही आत्मा की ह्लादिनी शक्ति प्रकट होती है। यह आत्मा की स्वरूपशक्ति है। जिसके द्वारा आत्मा अपने आनन्द का स्वयं आस्वाद लेता है। कृष्णभक्तों की परिभाषा में इसी का नाम राधा है एवं राम के उपासकों की दृष्टि में इसी का नाम सीता है। ह्लादिनी जब तक प्रकट नहीं होती तब तक इच्छा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

का उदय नहीं होता है। ह्लादिनी के प्रकट होने पर रमण के लिए साकार और निराकार दोनों सत्ताओं का योग होता है। साकार और निराकार के युक्त हुए बिना आत्माराम अवस्था प्राप्त नहीं होती है। ज्योति अथवा पुरुष निराकार है, आधार अथवा प्रकृति साकार है। ह्लादिनी शक्ति की क्रिया के बिना पुरुष और प्रकृति परस्पर मिलकर आत्माराम स्वरूप में स्थिति प्राप्त नहीं कर सकते हैं। ह्लादिनी का स्वभाव अत्यन्त शीतल है। उसका काम सब तरह से आनन्द से मूल का स्रोत बहाना है। इस बार ह्लादिनी शक्ति की सहायता से पुरुष-प्रकृति के योग से पूर्ण आत्मस्वरूप में स्थिति हुई। यही यथार्थ अद्वैत अवस्था है जिसका नामान्तर सच्चिदानन्द है। पहले प्रारम्भिक आत्मसाक्षात्कार के प्रसंग में जिस आत्मा का वर्णन किया गया है, वह प्रकृति विमुक्त आत्मा अथवा रिक्त आत्मा है। इस समय जिस आत्मस्वरूप का वर्णन किया गया है, वह प्रकृतियुक्त आत्मा या पूर्ण आत्मा है।

पूर्ण आत्मा एक है। जिस समय इस मूल एक स्वरूप में स्थिति होती है उस समय अभेद अथवा अद्वैत स्थिति कही जाती है—वह लीलातीत स्वरूपस्थिति है। यह पूर्ण है—पूर्ण होने से ही अग्नि से चिनगारियों की तरह इससे स्वभावतः भेद का अविर्भाव होता है। यही उनका अपनी शक्ति का खेल है, इस भेदांश का अविर्भाव अभेद के ऊपर प्रतिष्ठित है। इसलिए एक प्रकार से इसे भेदाभेद कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी, यही नित्य लीला की धारा है।

एक धारा और है। उस धारा में अपने स्वातन्त्र्य के बल से अभेद और अद्वैत अपने को छिपाकर दूसरे रूप में प्रकट होते हैं। उस धारा में अभेद-भाव गुप्त अथवा विस्मृत रहता है, इसलिए वह संसार की धारा में गिनी जाती है। पूर्ण से कला का आविर्भाव होने से अहंज्ञान का उदय होता है यही द्वैतधारा या संसारधारा का प्रारम्भिक मूल स्रोत है। है। ह्लादिनी शक्ति षोडशी कलारूप अमृतकला है, किन्तु अहंज्ञान षोड़शी कला से नहीं होता है, खण्डकला से होता है, क्योंकि कला जहाँ पूर्ण रहती है, वहाँ प्रकाश भी पूर्ण होता है। प्रकाश पूर्ण होने के कारण वहाँ अहंज्ञान का उदय नहीं होता है अर्थात् अहंज्ञान पैदा नहीं होता है। जो है वह परिपूर्ण रहता है, अहंभाव अहंकार नहीं है। अहंकार के रहने पर उसके प्रतियीगी के रूप में इदंभाव की सत्ता रहती है। अहंकार से अज्ञान अथवा मोह आविभूत होकर पुरुष को मोह में डालता है और ज्योति को आवृत कर डालता है। उस समय वह मोहग्रस्त पुरुष कर्मों

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

के वशवर्ती होकर निरन्तर चौरासी लाख योनियों में चक्कर काटता है। उसके बाद सद्गुरु की कृपा से तत्त्वदर्शन होने पर साधनपथ में चलता रहता है और क्रमशः साधन-सम्पन्न हो प्रत्यक्ष-ज्ञान के उदय के अनन्तर सिद्धि को प्राप्त होता है और अखण्ड सुख का अधिकारी होता है।

(८)

आनन्द के स्वरूप का विश्लेषण करने पर ज्ञात हो जाता है कि संक्षिप्तरूप से आनन्द का तीन श्रेणियों में विभाग किया जा सकता है। पहला ब्रह्मानन्द, दूसरा भजनानन्द और तीसरा जीवानन्द। ब्रह्मानन्द आनन्दस्वरूप है, किन्तु उसमें कुछ आस्वादन नहीं है; क्योंकि अपने को अपने से कुछ विभक्त किये बिना अपना आस्वादन नहीं किया जा सकता। जीवानन्द में आस्वादन है, किन्तु वह परिमित और विनाशी है। इस आनन्द की क्रमिक वृद्धि होती है, परन्तु पराकाष्ठा नहीं। वस्तुतः यह आनन्द स्वरूप दृष्टिसे भोगानन्द होने के कारण दुःख के ही अन्तर्गत है। आरोप साधकगण कहते हैं कि जीवानन्द सर्वदा हेय है, उनके मत में ब्रह्मानन्द भी उपादेय नहीं है। वे भजनानन्द को श्रेष्ठरूप में गिनते हैं। ब्रह्म में लीन जीव का आनन्द आम की गुठली के साथ तुलना करने योग्य है, जो वास्तविक रसास्वाद है, वह गुठली में नहीं है, छिलके में भी नहीं है, वह गुठली और छिलका—दोनों के मध्य में है। वही रसपदार्थ है। बुद्धिमान साधक दोनों छोर के दोनों का त्याग कर बीच की रस वस्तु का ग्रहण करते हैं। वास्तव में गुठली में भी रस नहीं है, छिलके में भी रस नहीं है। भजनानन्द प्रेम है, वही आस्वादन की वस्तु है।

साधक पूर्वोक्त प्रणाली से पूर्ण कलासम्पन्न होकर अपना आस्वादन करनेके लिए अपने से अभिन्न अखण्ड स्वरूप में स्थित रह कर भी अपने से अपने को पृथक् कर लेता है। उस समय प्रभु दोसे एक होकर एक स्वरूप में स्थित रहना चाहते हैं, क्योंकि वस्तुतः सत्ता तो एक ही है; किन्तु दास प्रभु के साथ एक होना नहीं चाहता है। वह जानता है कि यद्यपि दोनों की सत्ता एक ही सत्ता है, तथापि वह स्वयं भिन्न होकर प्रत्येक क्षण से उन्मेष तथा नूतन-नूतन सुख जिनके दर्शन से टपकता है उन्हीं का साक्षात्कार करना चाहता है। वह स्वरूपतः सनातन जानकर भी प्रति-क्षण नवीन नवीन—नित्य नवीन—की आकांक्षा करता है। वह ब्रह्म में लीन होना नहीं चाहता है, वह प्रभु के बराबर होना भी नहीं चाहता है। वह भगवान् शङ्कराचार्यजी की भाषा में यही है—'सत्यपि भेदापगमे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।' तब दासभाव दासीभाव में परिणत हो जाता है, वह देखता है एक पुरुष है, शेष सब प्रकृतियाँ—दासियाँ—हैं। जीव और अजीव सभी प्रकृति हैं। सबके शरीर में केवल एक ही पुरुष विद्यमान है। देह ही प्रकृति है। अथवा वह देखता है एक अखण्ड अद्वैत माँ या महाशक्ति है, शेष सभी उनकी सन्तान हैं। शिव भी उनकी सन्तान हैं, जीव भी उनकी सन्तान है। असली बात यह है, वह देखता है कि एक ही अद्वैत आत्मा स्वयं विद्यमान है। वे एक होते हुए भी अनन्त रूपों और अनन्त भावों से अपने साथ स्वयं क्रीड़ा कर रहे हैं। इस एक में उनके सब भेदों का समन्वय हो जाता है। यही आरोपसाधना की चरम सिद्धि है।

■

खेद प्रकाश

सम्पादकीय असावधानी के कारण पिछले वर्ष अक्टूबर संख्या में प्रकाशित "नैमिषारण्य की एक झलक" नामक लेख जो कि कुमारी गौरी बनर्जी के नाम से प्रकाशित हुआ है, वह वास्तव में कुमारी गीता बनर्जी का था। अपनो इस गलती के लिए हम लेखिका तथा पाठकों से क्षमा चाहते हैं।

—सम्पादक

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उपनिषद् विद्या : भारतीय जीवन दर्शन

—डॉ० मुनीश्वर झा—

[पूर्वानुवृत्ति]

निरन्तर ध्यान करने से निगूढ़ देव के दर्शन होते हैं, यही उपनिषद्-विद्या का सन्देश है। यह स्थिति स्वानुभूति है। स्वानुभूति में जो आनन्द प्राप्त है, उसके प्रकाशन में वाणी असमर्थ है।

आत्मा की अनुभूति विद्याओं से नहीं हो सकती, न बुद्धि से और न वेदाध्ययन से। पुस्तक पढ़ते-पढ़ते तो हमें भ्रम हो जाता है। ब्रह्मानुभूति के लिए आत्मिक उन्नति चाहिए। जिसको आत्मा वरण करता है, उसे ही इसकी प्राप्ति होती है। इसके साधना का दीप जलाना पड़ता है। जो आत्मलीन होता है, उसे आत्मा मिलता है। आत्मानन्दी ही शुद्ध रूप होकर परम पुरुष के साथ एकत्व प्राप्त करता है। वही अपने आप को जानता है। उसे जीवन का परम सत्य मिल जाता है। उसे मुक्ति मिल जाती है। उसका जीवन आनन्द रूप बन जाता है। यही आत्म तत्त्व भारतीय रहस्यवाद का मूल मन्त्र है।

उपनिषदों का परमतत्त्व ज्ञान मानवता का चिर आलोक है। जिसको आत्मज्ञान हो गया, उसमें द्वयता नहीं रह जाती है। सभी को अपने समान मानने लगता है। दूसरे का दर्द उसका अपना दर्द बन जाता है। सारा विश्व आत्मरूप हो जाता है। जिसने आत्मज्ञान पा लिया, वह तर गया। सब प्राणियों को परमात्मा में और परमात्मा को सब प्राणियों में जानकर आत्मज्ञानी उदार बन जाता है। उसे कभी दुःख और शोक नहीं होते, क्योंकि वह स्वार्थ से ऊपर उठा रहता है। उसे आनन्द ही आनन्द है।

उपनिषद् विद्या के अनुगमन से हृदय में दिव्य भाव का उदय होता है। नेत्रों के सामने दिव्य आलोक विकीर्ण होता रहता है। इसीलिए तो उपनिषदों के लैतिन रूपान्तर को पढ़कर ही जगद्विख्यात जर्मन दार्शनिक शोपेनहार चमत्कृत हो उठा था। उसके शब्दों में 'उपनिषद् के प्रत्येक वाक्य से उदात्त, स्वतन्त्र और समुन्नत विचार समुदित होते हैं। ....उसमें एक उच्च, पवित्र और गम्भीर भाव व्याप्त है। सम्पूर्ण संसार में मूल ग्रन्थ उपनिषद् को छोड़कर प्रस्तुत औपनेखट-लैतिन रूपान्तरण-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ग्रन्थ से बढ़कर किसी अन्य ग्रन्थ का अध्ययन इतना लाभदायक और इतना उन्नतिकारी नहीं है। यह मेरे जीवन का सन्तोष रूप है, और मरते समय भी इससे मुझे शान्ति मिलेगी।

मानव-जीवन की दार्शनिक-मीमांसा में रहस्य विद्या लेकर उपनिषद्-कारों ने जो साधना की है, वह भारतीय संस्कृति की नहीं, अपितु विश्व संस्कृति की अमूल्य निधि है। लड्विग ने कहा कि एकेश्वरवाद वर्तमान का दर्शन है। विश्व के सृजन की व्याख्या इसी एकत्त्व से हो सकती है। और यह दर्शन जैसा कि विन्टरनित्स का अभिमत है, तीन हजार वर्ष पहले भारतियों को उपनिषद्-दर्शन के रूप में उपलब्ध हुआ था। इसी तरह फ्रांस की विदुषी मदाम राने का उद्घोष है: मैंने देश-विदेशों का भ्रमण किया। उनकी संस्कृति और उनकी विचारधारा का अनुशीलन किया। पर भारत की उपनिषद्-विद्या की गहराई में बैठकर जो मोती मुझे मिला, वह अन्यत्र दुर्लभ था। समस्त प्राणियों का एकात्मबोध मानव-जीवन का चरम दर्शन है जिससे हमारा जोवन साधारण कोटि से ऊपर उठकर परमार्थ कोटि तक पहुँच जाता है। इसमें वर्ग, वर्ण और धर्म के विभेद नहीं रह जाते हैं। जीव वस्तुतः ब्रह्म रूप है। इस ज्ञान से संसार के बन्ध से निवृत्ति मिलती है और अद्वैत ज्ञान होने पर जीव अपनी सभी उपाधियों से मुक्त होकर सच्चिदानन्द रूप प्राप्त कर लेता है। यही परम तत्त्व की प्राप्ति उपनिषदों की अमूल्य देन है जिससे जीव को 'जीवन्मुक्ति' मिलती है।

जहाँ वेदवेत्ता ब्रह्मवाणी के सार को योग अथवा साधना द्वारा पा लेता है, वहीं अमृत लोक का सृजन होता है। अक्षय सुख की सरिता बहने लगती है; अमृत जल को वृष्टि होती है, दिव्य ज्योति विकीर्ण होने लगती है। यह उपनिषद् ज्ञान किसी भी समाज को उन्नत कर सकता है। मानवता की जागृति का स्वर्णिम प्रकाश फूट पड़ता है। ब्रह्म-विद्या को सब में बाँट कर मनुष्य बल और शक्ति पा सकता है। फिर ऐसे समाज का निर्माण सम्भव है जहाँ समाज के प्रत्येक व्यक्ति को जीवन-दृष्टि मिलती है। प्रत्येक व्यक्ति तब समझने लगता है कि कोई भी वस्तु, कोई भी पदार्थ परमात्मा से पृथक् नहीं है। परमात्मा की सत्ता ही है। परमात्मा के बिना कोई न बढ़ सकता है, न सद्गति पा सकता है। मानव-कल्याण की भावना सहज उठती है। एक की वेदना दूसरे की वेदना बन जाती है, और एक का सुख दूसरे का सुख। एक की रक्षा दूसरे की रक्षा बन जाती है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उपनिषद् दर्शन की मूल भित्ति ऋत और सत्य पर टिकी है। मन्त्र-काल से ही वैदिक संस्कृति का नैतिक आधार सत्य और ऋत था। उपनिषदों के धार्मिक रहस्य का लक्ष्य यदि एक सूत्रीय परमात्म तत्त्व था, तो उनका नैतिक रहस्य इन्हीं दो गुणों से उद्भावित था। सृष्टि की सारी प्रक्रियाएँ प्राकृतिक नियमों के अधीन चल रही हैं। इन नियमों का पालन ऋत है। वास्तविक तत्त्व का संरक्षण सत्य है। ऋत और सत्य दोनों एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। इन दोनों में भेद की सीमा नहीं है। जहाँ ऋत है, वहीं सत्य है। जो सत्य का पालन करता है, वही ब्रह्मज्ञान का अधिकारी बन सकता है। कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय उपनिषद् के वाक्य हैं : सत्य बोल। धर्माचरण कर। कभी स्वाध्याय से विरत न हो। कभी सत्य से दूर न जा। सत्कर्म से प्रमाद न कर। सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः।....सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्॥ तै० १-११-१।

वहीं आगे चलकर जीवन यात्रा में समुन्नत होने के लिए सशक्त सन्देश दिये गये हैं। माता-पिता को पूजनीय देव जान। आचार्य और अतिथि को उपास्य देव मान। जो कर्म अनिन्द्य हैं, उन्हें ही कर। निद्ध कर्म मत कर। जो कुछ किसी को देना, श्रद्धा से देना। अश्रद्धा से कभी कुछ नहीं देना। किसी काम करते समय सन्देह हो, या किसी विचार लेकर सन्देह हो, तो जो व्यक्ति ज्ञानी और विवेकी हैं, जो कोमल हृदय वाले हैं, उनकी संगति कर। वे जैसा करें, वैसा तू भी कर। यह आदेश है, यह उपदेश है, यही वेदों की उपनिषद् है। यही अनुशासन है। इसके अनुरूप ही अनुष्ठान और आचरण कर।

इस प्रसंग में जबाला सत्यकाम का उपाख्यान बड़ा ही रोचक है। जबाला का पुत्र सत्यकाम वेदाध्ययन करना चाहता था। उस समय ब्राह्मण-कुमारों को ही वेदज्ञान प्राप्त था। सत्यकाम के साथ बड़ी लाचारी थी। उसे अपने वंश-गोत्र का पता नहीं था। अपनी माँ से उसने पूछा—"माँ, बतला मेरा वंश क्या है? मैं ब्रह्मचारी बनकर स्वाध्याय करना चाहता हूँ।" माँ का हृदय क्षोभ से जलने लगा। हाय, यौवन के मद में उसने कैसी भूल कर ली! किया माँ ने, किन्तु सजा मिलती अबोध शिशु को। कुल और जाति का मिथ्या अहंकार लोगों में बना है। व्यक्ति को कोई नहीं पूछता। क्या छल ही काम्य है? पर जबाला ऐसी नारी नहीं, जिसके जीवन छल प्रपञ्च हो। उसने कहा—"बेटा, मैं नहीं जानती किन्तु किस वंश का है। यौवनावस्था में अपने पिता के अतिथियों

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

का स्वागत करते मैंने तुझे गर्भ में धारण किया था। मेरा नाम जबाला है और तेरा नाम मैंने सत्यकाम रखा। मेरी इच्छा थी जैसा नाम वैसा तू बन। जा, गुरु से यही कहना कि तू सत्यकाम जाबाल है।"

सत्यकाम गौतम के आश्रम में गया। उसने कहा—"गुरुदेव, मैं वेंदाध्ययन करना चाहता हूँ। पर मुझे अपने गोत्र का पता नहीं है। मैंने अपनी माता से इसकी जिज्ञासा की थी। उसने बतलाया कि यौवनावस्था में सेविका के रूप में उसने मुझे धारण किया था और कहा–'मैं तेरा वंश नहीं जानती। मेरा नाम जबाला है और तेरा सत्यकाम'। देव, इस प्रकार मैं सत्यकाम जाबाल हूँ। आपके शिष्य बनने का बड़ा लोभ है।' इतना कहकर शिष्य ने मस्तक झुका दिया।

गौतम नूतन धर्म के प्रणेता थे। उनमें संकीर्ण भावना न थी। उन्होंने कहा—वत्स, मैं तुझसे प्रसन्न हूं। ब्रह्मविद्य के अतिरिक्त कोई भी कठोर सत्य को नहीं बोल सकता। तू मेरा शिष्य बन। जा, समिधा ला। तप कर। मैं तुझे दीक्षा दूँगा। तू सत्यव्रती है। जो सत्यव्रती है, वही ब्रह्म विद् है, वही ब्राह्मण है।

सत्य और तपस्या पर आधृत ब्राह्म जीवन की उद्भावना उपनिषद्-दर्शन की व्यापकता का समुज्ज्वल प्रमाण उपर्युक्त उपाख्यान है। साधना हीन और कुल-जाति के मिथ्या अभिमान पर मरने वाले रुग्ण समाज के लिए सत्यकाम जाबाल उपाख्यान महान् सन्देश देता है। यह व्यक्ति मानव के सम्मान और गौरव का गान है। इसी परम्परा पर हमें नयी मानवता की स्थापना करनी है जहाँ सत्य और न्याय का मूल्य होगा, मनुष्य के व्यक्तित्त्व का मूल्यांकन जहाँ उसके व्यक्तिगत गुणों से होगा।

उपनिषद् में ज्ञान के अमृत स्रोत से संजीवनी शक्ति पाकर आत्म विश्वास के साथ कर्मयोग का दर्शन है। ज्ञान, उपासना और आचरण, इन तीनों का समन्वय उपनिषद्-विद्या का रहस्य है।

इस विश्व में जो कुछ है, सब में ईश्वर व्याप्त है। मोह-ममता को छोड़कर भोग करो। किसी के धन का लोभ मत करो।

यहां कर्म करते ही सौ वर्ष जीने की कामना रखो। इसी में कल्याण है। कर्म-बन्धन से बचने का यही उपाय है।

घोर तमसाच्छन्न लोक असुर्य है। वहाँ आत्महन्ता हो जाते हैं।

वह (ब्रह्म) चलता भी है। वह सबके भीतर है और सबके बाहर भी है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जो सबको अपने में देखता है और अपने को सब में देखता है, उसके लिए कुछ भी गुप्त नहीं है।

जिसके लिए सब प्राणी अपने हैं, उस एकलदर्शी के सामने मोह और शोक का प्रश्न नहीं रह जाता।

द्र० ईशावास्योपनिषत्।

यह जीवन गान है। इसमें जीवन की सार्थकता है, उसकी पूर्णता है। इसमें समग्र मानव-जाति के कल्याण की भावना निहित हैं। उपनिषद् का यही सार्वभौम सन्देश है।

उपनिषद्-विद्या में इह लोक और परलोक दोनों की जय है। यदि हम इस जीवन-दर्शन को व्यक्ति और समाज में ला दें, तो हमारे ९० प्रतिशत अवगुण मिट जायँ। हम तो अपनी परम्परा भूल गए। कान मूँद लिए, आँखें फेर लीं। आवश्यकता तो इसकी है कि हम अपनी उपनिषद्-विद्या की सम्पदा को ठीक-ठीक समझें और समाज में नव-जीवन और नव-मन का सृजन करें। महाकवि प्रसाद के शब्दों में मेरी कामना है—

चेतना का सुन्दर इतिहास,
अखिल मानव भावों का सत्य।
विश्व के हृदय पटल पर दिव्य,
अक्षरों से अंकित हो नित्य॥

कामापनी : श्रद्धा सर्ग, पृ० ५८

■

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

क्रिया योग साधना का रहस्य

—डा० शान्तिप्रसाद आत्रेय—

पातंजल योग सूत्र[1] में कर्मों का विवेचन बड़े अच्छे ढंग से किया गया है। ऐच्छिक क्रियाओं का बहुत सुन्दर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। भावनाएँ, क्लेश, संवेग आदि ही हमारे कर्मों के प्रेरक हैं। उन्हीं के द्वारा कर्मों में प्रवृत्ति होती हैं। जिन विषयों से हमें सुख प्राप्त होता है, उनके प्रति हमें राग हो जाता है तथा जिन विषयों से हमको दुःख प्राप्त होता है, उनके प्रति द्वेष उत्पन्न हो जाता है। सुख प्रदान करने वाले विषयों में बाधक विषयों के प्रति तथा सुख में विघ्न पहुँचाने वाले विषयों के प्रति द्वेष उत्पन्न हो जाता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, राग के द्वारा ही द्वेष की उत्पत्ति होती है और ये राग द्वेष ही प्रयत्नों का कारण हैं। राग द्वेष के बिना प्रयत्नों का उदय नहीं होता है, जो कि मानसिक, शाब्दिक वा शारीरिक चेष्टा का कारण हैं। राग के कारण प्रिय विषयों के प्राप्ति की इच्छा होती है तथा द्वेष के कारण उन दुःख देने वाली वस्तुओं से निवृत्ति प्राप्त करने की इच्छा होती है। ये इच्छायें ही हमें कर्म में प्रवृत्त करती हैं और इनके द्वारा जो चेष्टाएँ या क्रियाएँ होती हैं उन्हें ही ऐच्छिक क्रियाएँ कहते हैं। ऐच्छिक क्रियाएँ सुख या दुःख को प्रदान करने वाली होती हैं। हमारी कुछ ऐच्छिक क्रियाओं के द्वारा दूसरों को सुख-लाभ होता है, दूसरों का हित होता है तथा कुछ ऐसी क्रियाएँ होती हैं जिनके द्वारा दूसरों को दुःख होता है, उनको हानि पहुँचती है। जिन ऐच्छिक क्रियाओं के द्वारा समाज का हित होता है, वे कर्म-धर्म को उत्पन्न करने वाले होते हैं। जिन कर्मों के द्वारा समाज का अहित होता है तथा जो समाज के लिए घातक होता है, उन कर्मों से अधर्म की उत्पत्ति होती है। ये धर्म और अधर्म संस्कार रूप से विद्यमान रहते हैं। उन्हीं पूर्व के लिए गये बुरे कर्मों से अधर्म तथा भले कर्मों से धर्म की उत्पत्ति होती है। उनके कारण ही वर्तमान में दुःख तथा सुख प्राप्त होते हैं। इस प्रकार से क्लेश से कर्म, कर्म से धर्म-अधर्म रूप कर्माशय तथा उनके द्वारा जाति, आयु, भोग आदि प्राप्त होता है। और यह चक्र निरन्तर चलता ही रहता है। क्लेशों का मूल कारण अविद्या

१. गीता २४—५ से ६ तक।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। अविद्या ही क्लेशों को उत्पन्न करती है। अविद्या से अस्मिता की उत्पत्ति होती है और अस्मिता से ही राग, द्वेष आदि समस्त क्लेशों का उदय होता है और इन क्लेशों से ही कर्म तथा उनके धर्म-अधर्म रूप कर्माशय जिनके फलस्वरूप जाति, आयु, भोग का चक्र चलता रहता है।

कर्म स्वयं में फल के देने वाले नहीं होते। उनके करने में हमारी मनोवृत्ति ही धर्म-अधर्म रूपी कर्माशय की उत्पत्ति का कारण होती है। इच्छाओं और वासनाओं के द्वारा ही कर्मों में बन्धन शक्ति आती है। कर्म अगर स्वयं बन्धन का कारण होते अर्थात् धर्माधर्म रूप कर्माशय को उत्पन्न करने वाले होते तो संसार चक्र से छुटकारा प्राप्त करना असंभव हो जाता, किन्तु ऐसा नहीं होता।

योग में ऐच्छिक क्रियाओं के नैतिक वर्गीकरण में चार प्रकार के कर्म बताये गए हैं। वे चार निम्नलिखित हैं—

१—शुक्ल (पुण्य या धर्म)।
२—कृष्ण (पाप या अधर्म)।
३—शुक्ल-कृष्ण (पुण्य पाप मिश्रित)।
४—अशुक्ल-कृष्ण (न पुण्य न पाप)।

१. शुक्ल—[पुण्य या धर्म]

ये धर्म पर हित, अहिंसा, तप, स्वाध्याय आदि करने वाले व्यक्तियों के होते हैं। तप, स्वाध्याय, ध्यान आदि से किसी प्रकार का सामाजिक अहित नहीं होता, इसलिए ये कर्मधर्म को ही उत्पन्न करने वाले होते हैं। इन शुभ कर्मों से जो धर्म रूप कर्माशय उत्पन्न होते हैं, उन्हीं के फलस्वरूप व्यक्ति को सुख प्राप्त होता है। इन कर्मों से उनके फल के अनुसार ही वासनाओं का प्रादुर्भाव होता है। अतः उन्हें भी कर्म फल भोगने के लिए जन्म ग्रहण करना पड़ता है। वर्तमान जीवन में पूर्व के धर्म रूपी कर्माशय के ही फल को सुख रूप में भोगते हैं। यह कर्म ही हमारी मनोवृत्ति से प्रभावित होने के कारण हमें निश्चित रूप से फल भोगवाते हैं, अतः संसार के चक्र में डाले रहते हैं।

२. कृष्ण [पाप या अधर्म]

समाज के लिए अकल्याणकारी कर्म जैसे, चोरी, हिंसा, व्यभिचार, बलात्कार जितने भी असामाजिक कर्म हैं, वे सभी कृष्णकर्म कहलाते हैं। इस प्रकार के कर्म करने वाले व्यक्ति को ही दुरात्मा, पापी कहा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जाता है। इन दुष्कर्मों से जो अधर्म रूप कर्माशय उत्पन्न होते हैं, उन्हीं के फलस्वरूप व्यक्ति को दुःख प्राप्त होता है। इन कर्मों से उनके फल के अनुसार ही वासनाओं की अभिव्यक्ति होती है। अतः प्राणी को इन पाप कर्मों का फल भोगने के लिए उसके अनुरूप ही जन्म प्राप्त होता है। वर्तमान जीवन में पूर्व के अधर्मरूपी कर्माशय के ही फल को दुःख रूप में भोगते हैं। ये पाप कर्म भी हमारी मनोवृत्ति से प्रभावित होने के कारण हमें निश्चित रूप से फल भोगवाते हैं, अतः संसार के चक्र में डाले रहते हैं।

३. कृष्ण [पुण्य-पाप मिश्रित]

साधारण रूप से सामान्य मनुष्यों के द्वारा किये गये कर्म ऐसे होते हैं, जो कि समाज में किसी को अहित करके दुःख देने वाले होते हैं तथा किसी को हित करके सुख देने वाले होते हैं। अतः किसी को सुख और किसी को दुःख देने वाले होने के कारण वे पुण्य पाप मिश्रित कर्म कहलाते हैं। इन कर्मों के फलों के अनुकूल गुणों वाली ही वासनाएँ उत्पन्न होती हैं तथा प्राणी उन कर्मों के फल के अनुसार ही जन्म, आयु आदि प्राप्त करता है तथा उनके अनुसार ही दुःख भोगता है। ये वासनायें कर्म में प्रवृत्त करती है और उन्हीं कर्मों के अनुसार फिर वासनाएँ बनती है। इन पुण्य-पाप मिश्रित कर्मों को करवाने वाली प्राणियों की मनोवृत्तियों के कारण उन्हीं के अनुसार सुख-दुःखरूपी कर्म-फल भोगने का चक्र निरन्तर चलता रहता है। जितने भी कर्म किसी को कष्ट तथा किसी को सुख देने वाले उभयजनक होते हैं। उन सभी शुक्ल-कृष्ण कर्म को कहा जाता है। उपर्युक्त ये तीनों प्रकार के कर्म लगाव या वासनापूर्ण कर्म होने के कारण प्राणियों को निरन्तर कर्माशय के द्वारा उनके अनुकूल फलभोग प्रदान करने के लिए संसारचक्र को चलाते रहते हैं। संसारचक्र ही इन वासनापूर्ण कर्मों के कारण है। अतः कर्म स्वतः में फल प्रदान करने वाले नहीं होते, बल्कि मनोवृत्ति ही फल प्रदान करती है, जो कि नीचे दिए हुए अशुक्ल-अकृष्ण कर्मों के विवेचन से स्पष्ट हो जाता है।

४. अशुक्ल-अकृष्ण [न पुण्य न पाप]

फलों की आशा रहित निष्काम कर्म अशुक्ल-अकृष्ण कर्म होते हैं वे कर्म समाज में किसी को हानि तथा किसी को लाभ पहुँचाने की मनो-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वृत्ति से नहीं किये जाते हैं। कर्म जब भावनाओं से प्रेरित होकर नहीं किये जाते तो उनके धर्माधर्म रूप कर्माशय नहीं बनते, अतः वे कर्म फल नहीं प्रदान कर सकते हैं। योगी लोगों के ही कर्म इस प्रकार के होते हैं। अविद्या आदि क्लेशों से प्रेरित होकर वे कर्म नहीं करते हैं। बन्धन का कारण तो लगाव है। कर्म वासनाएँ ही कर्मों का फल देती हैं। वासनारहित कर्म न तो धर्म रूप होते हैं और न अधर्म रूप। गीता के १८वें अध्याय के श्लोक में भी इसी भाव को व्यक्त किया है।

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः॥

ज्ञानी लोग समस्त काम्य कर्मों के छोड़ने को संन्यास कहते हैं तथा पंडित लोग सब कर्मों के फलों के त्याग को ही त्याग कहते हैं।

जहाँ तक कर्मों का प्रश्न है उनको तो किए बिना रहा ही नहीं जा सकता। किन्तु कर्म में प्रवृत्त करनेवाले अविद्या आदि पंच क्लेश नहीं होना चाहिए। योगियों के समस्त कर्म ऐसे ही होते हैं। वे समस्त कर्मों तथा उनके फलों को समर्पित कर अपने आप हर प्रकार के बन्धन से मुक्त रहते हैं। वे केवल कर्तव्य के लिए ही कर्तव्य करते हैं। पाश्चात्य दार्शनिक कार्य के अनुसार भी भावनाओं और मनोवेगों के द्वारा प्रेरित होकर कर्म करना अनैतिक है। सच तो यह है कि आत्म सन्तुष्ट व्यक्ति के लिए अपना कोई कार्य रह ही नहीं जाता है। उसके समस्त कार्य ईश्वर तथा समाज के कार्य होते हैं। उनको स्वयं कर्म करने न करने से कोई लाभ नहीं होता है। इस प्रकार के कर्म आसक्तिरहित होते हैं। ज्ञानी जानता है कि कर्म गुणों के द्वारा होते हें। इसलिए वह अज्ञानी की तरह अहंकारवश अपने को कर्ता समझकर उनमें आसक्त नहीं होता है। गीता में बड़े सुन्दर ढंग से इनका वर्णन पाँचवें अध्याय के १०, ११ १२वें श्लोकों में किया गया है।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गंत्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥१०॥

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं व्यक्त्वात्मशुद्धये॥१२॥

युक्तः कर्मफलं व्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण फलं सक्तो निबध्यते॥१२॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जो व्यक्ति अपने समस्त कर्मों को ब्रह्म अर्पितकर आसक्ति रहित कर्म करता है, वह जल में कमल के पत्ते के समान पाप से निर्लिप्त रहता है ॥१०॥

निष्काम कर्म योगी केवल आत्मशुद्धि के लिए ही अहंकार बुद्धि रहित, आसक्ति छोड़कर केवल शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि से ही कर्म करते हैं ॥१२॥

योगयुक्त अर्थात् निष्काम कर्म योगी कर्म के फलों को त्यागकर (ब्रह्मार्पित करके) परम शान्ति प्राप्त करता है, तथा जो योग युक्त नहीं है अर्थात् सकामी व्यक्ति वासना से फलों में आसक्त होकर बँध जाता है ॥१२॥

सच तो यह है कि हमारे सुख-दुख का तथा पाप-पुण्य का सारा जाल त्रिगुणात्मक प्रकृति का है। अज्ञान के कारण त्रिगुण (सत्त्व, रजस्, तमस्) अव्यय, निर्विकार, आत्मा को शरीर से बाँधते हैं; इस बंधन के कारण आत्मा अपने को सीमित समझने लगता है। सत्त्व, रजस् तमस् ये तीनों गुण ही आत्मा को बाँधते हैं। सत्त्व सुख और गान से, रागात्मक रजो गुण तृष्णा और आसक्ति को पैदा कर कर्मों में प्रवृति द्वारा तथा मोहात्मक तमोगुण आलस्य निद्रा तथा प्रमाद से प्राणो को बाँधते हैं। ये गुण अहंकार को पैदा करने वाले होने से ही बाँधते हैं। बंधन रहित होने के लिए अहंकार को समाप्त करना चाहिए। अतः सब कर्म भगवान् को समर्पित करने चाहिए जिससे कि कर्म करने का अभिमान समाप्त हो जाता है और वे कर्म फल प्रदान करने में आसक्त हो जाते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि साधारण व्यक्तियों के तीन प्रकार के कर्म शुक्ल, कृष्ण, तथा शुक्ल-कृष्ण मिश्रित क्रम से क्रम से धर्म, अधर्म तथा धर्माधर्म रूपी कर्माशयों को उत्पन्न करने वाले होने के कारण व्यक्ति को जन्म, मरण के चक्र में निरन्तर घुमाये रहते हैं, किन्तु निष्काम कर्म बन्धन उत्पन्न नहीं करते। योग सूत्र के साधनपाद में क्रियायोग का वर्णन है। कर्मयोग को ही क्रिया योग कहा गया है। तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान को क्रियायोग इसलिए कहा गया है कि ये कर्मयोग के साधन हैं। हर व्यक्ति एकाग्रचित्त वाला नहीं होता। जो व्यक्ति चंचल चित्त वाले होते हैं; उनके लिए तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान को बनाया गया है जिससे उसका चित्त शुद्ध तथा स्थिर हो सके। समाहित चित्तवाले उत्तम अधिकारियों के लिए तो अभ्यास तथा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वैराग्य की अनेक विधियाँ योग सूत्र के प्रथम पाद में वर्णित हैं, किन्तु विक्षिप्त चित्त अर्थात् रागद्वेष, तथा सांसारिक वासनाओं वाले मलिन चित्त अभ्यास तथा वैराग्य साधन नहीं कर सकते हैं। अत: ऐसे व्यक्तियों के चित्त भी शुद्ध होकर अभ्यास तथा वैराग्य साधन कर सकें इसके लिए योगसूत्र के दूसरे पाद में क्रिया योग सहित यम, नियम आदि का वर्णन है। अतः तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान भी योग के साधन हैं।[1] अविध्या आदि पंच क्लेशों के चित्त में अनादि काल से पड़े हुए संस्कारों को क्षीण करके साधक को योगयुक्त बनाने के लिए क्रिया योग है।[2] बिना क्लेशों को क्षीण किए अभ्यास तथा वैराग्य सुगमता से नहीं हो सकते। क्रिया योग समाधि सिद्ध होती हैं तथा समाधि अभ्यास से सम्प्रज्ञात समाधि की उच्च अवस्था विवेक ख्याति प्राप्त होती है। इस विवेक ज्ञान रूपी आग से क्रिथा योग के द्वारा क्षीण किये हुए क्लेशों के संस्कार रूपी बीज भस्म हो जाते हैं जिससे फिर वे क्लेश प्रदान करने योग्य ही नहीं रहते।

तप

तप शरीर, इन्द्रियों, प्राण तथा मन को उचित रीति से नियन्त्रित करने का साधन है। तप के बिना अनादि काल के रजस तथा तमस प्रेरित कर्मों, क्लेशों तथा वासनाओं से मलिन चित्त की शुद्धि नहीं हो सकती है। तप के द्वारा ही साधक गर्मी, सर्दी, भूख, प्यास, सुख-दुःख तथा मान-अपमान आदि के द्वन्द्वों में भी स्थिर होकर योग में लगा रहा सकता हैं। राजसी तथा तामसी तप की योग में निन्दा की गई है, क्योंकि उनके द्वारा शरीर तथा इन्द्रियों में रोग तथा पीड़ा और चित्त में अप्रसन्नता होती है। जिस प्रकार स्वर्णादि धातुओं के मल को अग्नि जला देती है, ठीक उसी प्रकार से तप से साधक का तमोगुणी आवरण रूपी मल जल जाता है।

तप के द्वारा शरीर स्वस्थ, स्वच्छ, निर्मल तथा हलका हो जाता है। शरीर तथा इद्रियों की सिद्धि प्राप्त होती है। शरीर में अणिमा (शरीर को सूक्ष्म कर लेना), लघिमा (शरीर को हलका कर लेना), महिमा (शरीर को बड़ा कर लेना), प्राप्ति (पृथ्वी पर बैठे-बैठे ही उँगली के पोरे

१. यो० सू० भा० २-२
२. यो० सू० भा० २-२

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

से चन्द्रमा को छू सकना), प्राकाम्य (इच्छा पूर्ण होने में कोई रुकावट न होना अर्थात् जो चाहो सो प्राप्त होना), वशित्व (समस्त भूतों तथा पदार्थों को वश में करना, ईशित्व (ईश्वरतत्व प्राप्त होना अर्थात् ईश्वर के समान शक्ति प्राप्त होना), यत्र कामावसायित्व (योगी के संकल्प के अनुसार पदार्थों के गुण हो जाना । योगी संकल्प से विष में अमृत के गुण पैदा कर सकता है, किन्तु ऐसा करता नहीं), आदि शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। दिव्य दर्शन, दिव्य श्रवण आदि इन्द्रियों की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।[1] तप का पूर्ण रूप से अनुष्ठान होने पर तम रूप अशुद्धियाँ नष्ट होकर आणिमादि सिद्धियाँ, आवरण हटने के कारण स्वतः प्रकट हो जाती है।

[क्रमशः]

१. योग० भा० २।४२

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्री श्री माँ आनन्दमयी

—श्री चैतन्य बेन दिपेटिया—

जनवरी, सन् १९४५ ई० की बात मुझे श्री श्री माँ आनन्दमयी का दर्शन करने को सौभाग्य, अहमदाबादमें स्वर्गीय कांति भाई मुनशा के घर तथा समर्थेश्वर महादेव मंदिर में प्राप्त हुआ था। सच तो यह है कि श्री श्री माँ के मुख में मुझे अपनी जन्मदात्री जननी के दर्शन हुए। यह यह मेरा भ्रम नहीं था, बल्कि कुछ क्षणों, एक या दो मिनट के लिए यह पूर्ण सत्य था। यह क्षणिक समय मेरे हृदय में सदा के लिए अंकित हो गया। उस दिन के बाद से माँ जब कभी अहमदाबाद आतीं तो मैं उनका दर्शन करने के लिए अवश्य जाती थी उनके दर्शन मात्र से मेरा हृदय एक अनुपम-प्रेम और आनन्द अनुभव करती थी। उसे शब्दों में या वाणी द्वारा व्यक्त नहीं कर सकती। उनकी कृपा से मुझे कई बार उनसे एकान्त में वार्ता करने का अवसर मिला था।

उस समय उन्होंने मुझे निस्सन्देह अपने आकर्षण–शक्ति और सौम्य प्रेमभाव से आकर्षित कर लिया था। उनकी देवी प्रतिमा से मेरे अन्तर मन में प्रेमभाव उत्पन्न हुआ। उन दिनों मैं संयोगवश उनके आश्रम तक जाने में असमर्थ थी। लेकिन हर प्रकार के कर्मभूमि से निरत रहते हुए भी उन्होंने मेरे आंतरिक मनोभूमि पर विजय प्राप्त कर लिया था।

मुझे अच्छी तरह याद है कि एक बार एकान्त में मुलाकात होने पर उन्होंने मुझसे कहा था—"सुबह जब तुम सोकर उठती हो तब माँ (देवी भगवती) से प्रार्थना करना कि मैं दिन भर जो कुछ करती हूँ, वह मैं नहीं करती। आप जो कराती हैं, वही करती हूं और रात को सोने के पहले यह प्रार्थना करना कि माँ, मैं आपकी गोद में सोने जा रही हूँ।'

इन बातों को श्री श्री माँ ने इतने प्रेम, वात्सल्य और मधुर स्वर में कहा कि मैंने निरंतर श्री श्री माँ की आज्ञा का पालन करने का नियम ही बना लिया। यह थी मेरी माँ के साथ प्रथम दिनों की मुलाकात की कहानी।

इस घटना से कई वर्ष बाद एक दिन मैं 'आनन्द वार्ता' पढ़ रही

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

थी। उससे यह ज्ञात हुआ कि श्री श्री माँ के सन्निध्य में महाशिवरात्रि उत्सव सम्पन्न होगा। मैंने माँ को तुरत पत्र पत्र लिखा। श्री श्री माँ ने मुझे अपने पास बुलाया। इसे सौभाग्य कहिये या दुर्भाग्य, मैं उनके पास नहीं जा सकी। इससे परेशान होकर मैंने माँ को पुनः पत्र लिखा कि घर पर किस तरहशिव की पूजा की जाय ?

मैं पिछले कई वर्षों से शिव की पूजा करती आ रही हूं। श्री श्री माँ ने पत्र लिखवा कर भेजा—"कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। मात्र सारा दिन शिव-नाम जप करती रहना।"

मैंने उनकी आज्ञा का पालन अत्यन्त श्रद्धा से किया। इससे कैसी अनुभूति हुई, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। माँ कौन हैं ? उनकी कृपा-करुणा क्या है ? इसे किस तरह समझा सकती हूँ। माँ ने स्वयं ही मना किया है।

मेरे पिता श्रीं रामकृष्ण परमहंस के परमभक्त थे। प्रतिदिन वे उनकी कथामृत पढ़ते थे। मैं भी उनके पास बैठकर पढ़ती थी। अक्सर पढ़ते समय मैं यह सोचा करती कि क्या मुझे अपने जीवन में ईश्वर स्वरूप ब्रह्मनिष्ठ गुरु प्राप्त न हो सकेंगे। ज्ञातव्य रहे कि अपने पिताजी के साथ श्री श्री माँ का दर्शन करने जाया करती थीं। श्री श्री माँ के प्रति मेरी भक्ति-श्रद्धा देखकर वे बड़े प्रसन्न होते थे।

मेरे मन की भावना को भगवान ने सुन लिया। साक्षात् नारायणी स्वरूपा श्री आनन्दमयी माँ के प्रथम दर्शन में ही मैंने गुरु पा लिया। इसके बाद मैं बराबर आश्रम में जाने लगी। यद्यपि माँ सर्वज्ञ और सर्वव्याप्त हैं, किन्तु मनुष्य-शक्ति से उनका मिलान करना असंभव है। उनके आश्रम में जाने वाले और न जाने वाले दोनों ही समान हैं। श्री श्री माँ मनुष्य-देह में मातृ-स्वरूप धारणा कर हम लोगों के लिए आयी हैं। वे अपनी दृष्टि और स्पष्ट कृपा में लोगों में अलभ्य शक्ति संचार करती हैं।

अधिकार के लिए उनसे प्रार्थना करनी चाहिए जिससे हम उनके कृपा के अधिकारी बन सकें। श्री श्री माँ तो साक्षात् नारायणी हैं। उनकी प्रशान्त, प्रगल्भ प्रतिभा की आभा का कोई भी अंश ग्रहण करने की क्षमता अपने में विकसित हो सके, यही प्रार्थना करना चाहिए। ठीक समय पर उनकी सौम्य कृपा-करुणा हमारे ऊपर कार्य करती है जिसके कारण हमारे मन, स्वभाव और विचारों में परिवर्तन होता है। जितनी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दृढ़ श्रद्धा होगी, उतना ही पा सकते हो। माँ कहती हैं—"जैसा बजाते हो, वैसा सुनते हो।"

माँ, आप अपनी कृपा दृष्टि तथा स्पर्श-शक्ति से मुझे चारों ओर से अपने भीतर ले लो (आप भीतर आ जाओ माँ!) जिससे आपकी अखण्ड स्मृति बन जाय। दिन-रात आपका स्मरण करता रहूँ, जीवन के अन्तिम समय तक—यही मेरी प्रार्थना है।

□

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

युग-निर्माण कब होगा

—श्री जय प्रकाश वार्ष्णेय 'दरोबा'—

जब हम सारे जन अपने को प्रभु का प्रेषित मानेंगें,
और यहाँ प्रभु ने हमको क्यों भेजा है यह जानेंगे।
जब अपने कर्तव्य कर्म पर हम आरुढ़ बनेगे सब,
जग बदलेगा, युग बदलेगा, मानवता विखरेगी तब।
सब शरीर को स्वस्थ्य रखेंगें, उसे प्रभु का मंदिरमान।
पर स्वारथ में उसे लगायेगें, तब होगा युग निर्माण ॥१॥

केवल तन ही नहीं स्वच्छ मन को भी अब करना होगा,
स्वार्थ लोभ सब तजकर मन में भव्य भाव भरना होगा !
कुविचारों दुर्भावों को अब नहीं पास रखना होगा।
सदाचार सद गुण से आलोकित पथ पर चलना होगा।
कर्तव्यों को करना होगा, जन हित को अपना हितमान।
तुच्छ स्वार्थों को तजना होगा तब होगा युग निर्माण ॥२॥

मन जीवन का केन्द्र बिन्दु है इसे नहीं हम भूलेंगें,
उसको सुन्दर और समन्वित कर हर्षित हो फूलेंगे।
संयम, सेवा, त्याग साधना का हम पाठ पढ़ेगे जब,
सज्जनता का सुखद सुमंगल वातावरण बनेगा तब।
परम्पराओं से विवेक को जब हम देगें ऊँचा स्थान।
तभी हो सकेगा इस युग में पावन सुख कर युग निर्माण ॥३॥

अन्य स्वर्ग की नहीं कामना, यही स्वर्ग हम लायेंगे,
सबमें प्रेम प्रचार करेगें, अमृत रस को बरसायेंगे।
नहीं रहेगा अब यह कलियुग, इसको बदलवाना होगा,
इस दुनिया में फिरसे हमको अब सत्युग लाना होगा।
आओ मित्रों, पूर्ण करें हम सब मिलकर यह संकल्प महान,
युग बदलेंगे और बदलेंगे और करेगें युग निर्माण ॥४॥

■

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मातृ-सत्संग

[२८ अक्टूबर ७९ से ३ नवम्बर ७९]

—डॉ० प्रेमलता श्रीवास्तव—

प्रश्न—जो दिखाई दे रहा और जो दिखाई नहीं भी दे रहा, भ्रम है फिर सर्वं खल्विद ब्रह्म ?

माँ—आदि में कुछ नहीं था, अन्त में भी कुछ नहीं रहेगा क्या है बतायें ? जो अमूल्य वर्षण हो रहा है, तब भी नहीं समझ आया। जो ज्योति प्रज्वलित हुआ है एक बात है—कौन कहता है ? प्रश्न कौन करता है ? मैं–मैं जब तक बोलने वाला ठीक-ठीक प्रकाश न हो, प्रश्न रह जाता है। ग्रन्थि खुलने तक महात्माओं के वचनों का श्रवण गुरु उपदेश पालन। शास्त्र में लिखा है, महात्मा जो कह रहा, वही तो प्रकाश है न। तुम शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, अज्ञान का जब तक पर्दा है, तभी तक प्रश्न है। इसलिए गुरु उपदेश पालन।

प्रश्न—आज यहाँ जो समवेत हुए हैं, सब लोग टिकट लेकर एक ही गाड़ी में जा रहे हैं, एक साथ पहुँचेंगे या अलग-अलग ?

माँ—जैसे गाड़ी में एक टिकट खरीदना माने गुरु धारण करना। एक बात है इसमें, अपने-अपने घरसे स्थिति अनुसार उसी-उसी तरह रवाना होते हैं, अपने-अपने गन्तव्य अलग। गुरु जो स्थिति में देखकर दिया है, उस स्थिति में जाता है, जब तक प्रकाश न हो। व्यक्त, अव्यक्त, अविनाशी यह जब तक समाधान न हो, तब तक यात्रा ही चलता है। अपनी-अपनी स्थिति में रहा, अपना-अपना गुरु जो रास्ता दिया, जो मुहूर्त में चलना स्थिति अनुसार चलना। और एक बात है—सब लोग मौन हों कैसी सुन्दर बात है—कोई बात नहीं करते, मौन—अव्यक्त वह प्रकाश होने के लिए संयम, मौन, शक्ति देते हैं। परदा अर्थात् पर-द्वार हटने के लिए। अनुकूल संयमित जीवन में शरीर-मन परिष्कृत हो जाता है। लक्ष पूर्ण करने के लिए, अपने को जाग्रत कर देते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रश्न—स्वामी विद्यानन्द-माँ यात्रा एक साथ हो रही है साथ पहुँचेंगे ?

माँ—गति जो अबाध जो अव्यक्त है प्रकाश जब तक न हो तब तक अपने स्वरूप प्रकाश के लिए, ट्रेन जहाँ जहाँ जाये, जहाँ-जहाँ लक्ष्य होगा उतरेंगे। अव्यक्त का प्रकाश जब तक न हो तब तक गन्तव्य स्थान पर पहुँचना नहीं।

गीता में कहते हैं हमारे हाथ का यन्त्र पर्दा हटाना। तुम जो अपना पर्दा लगाया है वह पर्दा हटाना। अनित्य जो पग है नष्ट होना शुरू हो गया। नष्ट—मानें "न इष्ट"। एक सेकेण्ड में क्या होने वाला है पता नहीं। जीव गति, जीव माने-बन्धन। गति माने "क्रिया"। हमारा स्वरूप क्या ? रूप रूप में भी है अरूप में भी है। स्वरूप, साकार सगुण किसे कहते हैं। जब तक अव्यक्त स्थिति, स्थान का प्रभाव-महात्मा दर्शन, इसीलिए जो यात्रा परम पद प्राप्ति के लिए यात्रा, इसी रूप में, इसी रूप में, इसी रूप में—अपने स्वरूप प्रकाश के लिए। असली बात कहो एक, एक, एक है दो है नहीं

अलग-अलग यन्त्र, अलग-अलग क्रिया प्रकाश के लिए संयम एक आत्मा, विश्व ब्रह्माण्ड जो कहो और शुद्ध-बुद्ध, शाश्वत मुक्त तो है ही। यह जो प्रश्न कर रहा है। हे भगवन् तुम्हीं हो, गति रूप में, स्थिति रूप में, अनित्य रूप में, नित्य रूप में, एक सिवाय दो नहीं, मनोराज्य के अन्तर्गत में।

तुम एक पंक्ति में खाने बैठो किसीके आगे पीछे जरूर होगा। जहाँ नित्य अनित्य का प्रश्न है जगत में साम्य नहीं हो सकता। जगत माने गति है न। संस्कार-क्रिया-व्यक्त-अव्यक्त जब तक रह गया जब तक पूर्ण समाधान न हो तब तक।

प्रश्न—माँ, हम वृन्दावन गये थे, आपके चरण स्पर्श करने से रोका गया, बहुत दुःख हुआ।

माँ—(चारों तरफ हाथ घुमा कर) कितने चरण पड़े रहे। विश्वरूप है न, वहाँ प्रणाम से सब प्रणाम हो जायेगा। और एक बात बता देते हैं खुश हो जाओ। बहुत आनन्द देते हो। बाबा लोगों का (मंच पर स्वामी ब्रह्मानन्दजीं व विद्यानन्दजी हैं) चरण छुओ उद्धार होगा। बाबा लोगों का चरण छूने के बाद प्रश्न कर्ता माँ के पास पहुँच कर बोला "माँ" अब तुम्हारे, लेकिन माँ ने प्रणाम के बाद

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उसे एक माला उठाकर अपने हाथ से पहनायी। माँ का ख्याल कृपा प्रसाद पाकर प्रश्नकर्ता खूब तृप्त होकर प्रसन्न हो कर लौट गया।

प्रश्न—माँ, जो लोग कुछ नहीं जानते। माँ, गुरु नहीं मिला ?

माँ—भगवान का कीर्तन करो गायन करो, वही करो देखो भगवान क्या करें, जो तुम्हारा प्यारा होता है, उसे प्यार से बुलाते हो—इस तरह से।

प्रश्नोत्तर के बाद माँ का दिव्य संकीर्तन हुआ।

२९.१०.७९

माँ—**सत् चिन्ता के अनुकूल क्रिया लेना।** जैसा बजाए वैसा सुने। यहाँ तीन ज्योति, त्रिनेत्र की बात, ज्ञान नेत्र जब तक प्रकाश न हो, **सत्क्रिया सत्य बोलना, सत् व्यवहार।**

नाम मानें न—माँ। उनकी शक्ति से पूर्ण समाधान कर लें, हे भगवान् तुम्हीं माता, तुम्ही, पिता, तुम्हीं स्वामी, सखा सब तुम्हीं। इसे कैसे पायें यह भावना बनी रहे हमेशा। भगवान ने स्वयं कल्पना मात्र से जगत् सृष्टि की, इसलिए कल्पना वगैर कोई कार्य नहीं कर सकते। सारा सब भगवान का खेल है, लीला ! भगवान् की लीला के अन्तर्गत ही बोल रहा।

प्रश्न—अहंकार कैसे दूर करें ?

माँ—भगवान् स्मरण, ध्यान, गुरु का उपदेश पालन करते-करते अहंकार दूर करना। जब तक न आए तब तक बुलाते रहो। जैसे बच्चा जब बाहर खेलने जाता है, वापस बुलाते है जब तक नहीं आता तबतक। उसी तरह कामन, वासना जबतक है तबतक।

प्रश्न—ठाकुर दर्शन के लिए मंदिर में जाने पर पैसा क्यों चढ़ाते हैं ?

माँ—ठाकुर-दर्शन को जो जाते हैं, मन्दिर में जो जाते हैं दर्शन करने से यह भाव—"आत्मसमर्पण", अपने को तो समर्पित कर नहीं पाते इसलिए थोड़ा-वहुत चढ़ाते हैं और देना चाहिए ही, पुष्प फल आदि जो कुछ हो आत्म समर्पण भाव। एक कोई दर्शन करने गया, मन में आया ऐसा सुन्दर दर्शन भगवान् ने दिया, पर मैं गया ही नहीं, उन्हीं का चरण स्मरण लेकर अपने को अर्पण।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

३०-१०-७९

प्रश्न—गुरु भक्ति प्रणाम में चार गुरु का स्वरूप है ?

माँ—बाबा ! (स्वामी प्रकाशानन्द जी से) शास्त्र में क्या लिखा है ? माँ आप जो बोलेगीं वही लिखा है।

माँ—बाबा बोले (स्वामी प्रकाशानन्द जी) बाहर का गुरु, गुरु अन्तर का परम परापर, परमेष्टि।

माँ—यही यह शरीर भी कहता है। भगवान् का कृपा करुणा हर समय वर्षण हो रहा सीधा पात्र रखने से भरेगा। उसका प्रयत्न।

जो बोल रहा, सुन रहा, ज्योति स्वरूप जो अनित्य पर्दा हटने से सर्व प्रकाश। भगवान् जो लीला क्षेत्र रखा, अपने को लेकर बड़ी सुन्दर बात कहा। नित्य ज्योति नहीं रहने से अन्धेरा दर्शन नहीं होता, बाबा ने कितने सुन्दर तरह से एक एकरूप से प्रकाश किया। अन्तर में ज्योति रहा है, वह है संयम, संयमी नहीं होने से लक्ष्य तक पहुँचना कठिन होता है और प्रश्न नहीं आता है। संयमी-जीवन में प्रश्न आता है। अपने जानने पाने के लिए सुन्दर रूप से एक-एक वर्षण भगवान् सबके लिए अन्दर में है। अपनी लीला खेल करते हैं। भगवान् से सब आते हैं। भगवान् में सब जाते हैं, सब दर्शन और सो अनन्त रोग अन्त नहीं कर सकते दर्शक, अनन्त सृष्टि एक खेल लीला। सब कोई के बीच में क्या अन्दर क्या बाहर, इसलिए बीज कहा—वह सिवाय कुछ नहीं, वहीं एक मात्र वहीं। अपने को जानने पाने के लिए वही गति पाने के लिये ही अमृत वर्षण हो रहा, अविराम, कैसा सुन्दर भगवान् का खेल। जलपान, चलन फिरन, व्यवहार कथन आसान चल रहा उसी लिए। इसलिये ग्राह्य शक्ति का क्रिया—इसलिये गुरु ग्रहण। यही सर्वमय, एक ज्योति रूपमें प्रज्वलित है। व्यक्त रूप में दर्शन आकर्षण।

प्रश्न—हमारे बीच क्या भगवान् नहीं आते ?

माँ—अज्ञान का आवरण, भगवान् के लीला क्षेत्र में जो रक्खा वही प्रश्न आया, उन्हीं के बीच में उत्तर।

प्रश्न—काम, क्रोध दूर हो ऐसा उपाय बतायें माँ।

माँ—उपदेश पालन करने का कोशिश, उपदेश शास्त्रीय कथन का

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वर्षण, वह ग्रहण, पालन करने की कोशिश, इससे संयम से जैसे प्रश्न आया। स्वभाव से आगे जाना चाहते हैं, माने अपने को जानना। अपने को जानना माने भगवान् को जानना। अभाव गति—जैसा अभाव है वैसा प्रश्न आता है। जितनी शक्ति जागरण होता है, उतना ही पालन करने की शक्ति।

अभाव भगवान् का ही है। वही चला रहा, चल रहा, सब कोई अपने को भगवान् स्मरण जो क्रिया में रहें वह क्रिया करना। निरन्तर स्मरण करने से काम-क्रोध का आवेश नहीं होता।

प्रश्न—माँ आपके आश्रम में बहुत जगह है यहाँ क्यों नहीं ?

माँ—आश्रम मानें जहाँ श्रम नहीं। और जो तुम स्थान की दृष्टि से बना रहे हो, इस शरीर का कोई बाउण्डरी नहीं है, वृक्ष के तले कभी किसी समय कहीं। जिसकी जो इच्छा है बनाया है। वहाँ जैसे यहाँ भी वैसे ही है।

प्रश्न—जब प्रारब्ध भोग है तब गुरु का आश्रम किसलिए ?

माँ—गुरु का आश्रम किसके लिये (चारों तरफ हाथ घुमाकर) सबसे मुक्त होने के लिए यही तो तुम चाहते हो।

३१–१०–७९

प्रश्न—निष्काम होकर कर्म कैसे किया जाय ?

माँ—बिल्कुल ख्याल नहीं आ रहा। कितना सुन्दर महान् वर्षण हो रहा, समाधान हो रहा।

बाबा बाबा माँ बोली।

स्वामी प्रकाशानन्दजी—व्यक्तिगत स्वार्थ देखकर जो समष्टि कर्म किया जाय वह निष्काम कर्म के अन्तर्गत।

माँ—कितना सुन्दर, बाबा कहाँ एक ख्याल आया जितना चल सकें, कर सकें। महान अमृत वर्षण के बीच में जो इतने दिन से जो संयम महाव्रत का कोशिश कर रहा। जरूरी जब हो तब बाहर जाय, कष्ट हो ज्यादा देर बैठा न जाय तब बात और बैठना, मौन-वाक् संयम; इन्द्रिय संयम, स्थिर भाव से बैठने का कोशिश कम से कम हिलना खांसना आदि, स्थिर भाव से बैठने से जैसे जड़ एक जगह स्थिर होने से बैठने से होता क्या है शरीर रूपी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यन्त्र जो है इसकी क्रिया होती हैं, अमृत की ओर जाने के लिए क्रिया होती है। किसी समय आता है हिलने का जी ही नहीं चाहता, ऐसे ही रहे। भगवान के हाथ का यन्त्र यही यन्त्र से जो बुलाता, कोई मुझे लगने का नहीं है। धीरे-धीरे स्थिर होकर बैठने से अपने आप आसन हो जाता है। जितना देर हो स्थिर जैसे खुजली खाँसी हाथ हिला रहा, अंगुली हिला रहा, पैर दुखता है, ठीक करके धीरे से बैठ जाओ, पुराना जो हैं धीरे-धीरे आ रहा, नया भी कर रहा।

भगवत् प्राप्ति के अनुरूप क्रिया करने से जोर क्या है, निष्काम है वही है, वही है, होने के लिए भगवत्-क्रिया जो हो रहा चलने से, कीर्तन से, हे भगवान तुम्हारे हाथ यन्त्र जैसा चल रहा, हो रहा, तुम्हीं हो, तुम्हीं हो, ऐसा भाव रखना आज एक तुम्हें हे भगवान् की कहानी सुनाने को कहा, समयाभाव से आज नहीं हो सका।

१-११-८९

आज प्रश्नोत्तर की जगह श्री श्री माँ का ख्याल हुआ। पहले छविदीदी ने गाना गाया। माँ का ख्याल नहीं हो रहा। बादमें सबके विशेषरूप से महन्त जी के अनुरोध पर माँ ने गाया। यह गाना माँ ने बताया। वृन्दावन में पथिक बाबा की भागवत् के समय स्वयं निसृत हुआ, माँ के शब्दों में माँ का ऊटपटांग।

आज इस बालक के अनुरोध पर माँ ने कहानी सुनाई। श्री कृष्ण-बलराम दोनों लड़ाई कर रहे हैं, क्योंकि कन्हैया पहले जाकर यशोदा माँ से मक्खन लेकर खा लेते हैं। बलराम ने कहा—नहीं, हमें पहले देना चाहिए। हम बड़े हैं, यशोदा माँ ने कहा वह पहले आ जाता है। बलराम काफी कोशिश करने पर भी पहले नहीं पहुँच पाते। तब यशोदा माता ने कहा—मैं सबेरे मक्खन मथकर बैठी रहूँगी जो यमुना-स्नान करके पहले आयेगा, उसी को पहले मक्खन दूँगी। दोनों भाई कृष्ण-बलराम साथ-साथ स्नान करने गये। कृष्ण-बलराम ने नदी में एक साथ गोता लगाया। कन्हैया गोता लगा कर उठ गये। उन्होंने सोचा कि गोता लगाकर जब उठेंगे तब एक साथ भागेंगे। बलराम गोता लगाकर नहीं उठे। वे तो किसी राज्य की राजधानी में पहुँच

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गए जहाँ के राजा का देहान्त हो गया था। वहां के लोगों ने यह निश्चय किया था कि जिस व्यक्ति में राजचिन्ह देखेंगे, उसे राजा बनायेंगे। बलराम में वैसा चिन्ह देखकर उन्हें राजा बना दिया गया। वहां बहुत आनन्द से रहे। महारानी, बच्चे राजकुमार और राजकुमारी के साथ आनन्द करते रहे। ठीक इसी समय 'दादा' शब्द सुनते ही वे गोता लगाकर उठ खड़े हुए। पर उनकी स्मरण-शक्ति गड़बड़ हो गयी। गोता लगाने के बाद क्या-क्या हो गया, यह स्मरण नहीं रहा। इधर कन्हैया दौड़ गया और मक्खन पहले खा लिया, बलराम जब कुछ कहना चाहा तब कन्हैया ने कहा—दादा, मैं गोता लगाने की बात बताऊँ ? बलराम ने कहा—नहीं, नहीं, तू ही आज से रोज मक्खन खा लिया करना।

माँ उस बच्चे से बोलीं—तुम हमारे दोस्त हो न, हमारे दोस्त बनोगे न, दोस्त की बात सुननी पड़ेगी, सुनोगे ?

१. सोकर उठते ही नमस्कार करना भगवान को और प्रार्थना करना—हमें अच्छा लड़का बना दो। भगवान का सेवक बना दो।

२. सच बोलने की कोशिश करना।

३. बड़ों का कहना मानना। बोलो, कितना हुआ ?

४. अच्छी पढ़ाई करना।

५. खूब खेलना।

माँ बोलीं—सबमें क्या पसन्द है ? ५वीं बात न ?

बच्चा बोला—क्या मैं बड़ा होकर स्वामी बन सकता हूँ ? क्या नाम रखोगी ?

माँ—पहले बनो फिर नाम आ जायेगा।

बच्चा माँ को प्रणाम करने आया। माँ ने हाथ बढ़ाया—हाथ बढ़ाने का अभिनय लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से शक्ति-संचार।

२–११–७९

आज मातृ-सत्संग गौरी शास्त्री ने संचालित किया।

प्रश्न—प्रारब्ध-भोग, दुःख-सुख का भोग क्यों ?

माँ—यह सुख-दुख का प्रश्न ही नहीं। नित्य क्या है ? नित्य कुछ नहीं है। क्या नहीं है नित्य ही तो है। स्थिति पर स्थान पर सुनाई

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

देता है। जैसा क्या आगे हाथ के यन्त्र को वैसा सुनेंगे। घिसते-घिसते ऐसा प्वाइण्ट आना चाहिए कि गलने वाला गले, जलने वाला जले। वह स्थिति आने के लिए यह कथा, सत्संग श्रवण, गुरु उपदेश ठीक-ठीक पालन हो जरूर प्वाइण्ट आयेगा। सदा कहता हूँ—गुरु उपदेश पालन करो। जप करो, ध्यान करो, पाठ करो आदि। तुम जो क्रिया कर रहे हो, वह हर समय उससे पर्दा हटाने का उपाय। लेकिन भगवान क्रिया के अधीन नहीं है। क्रिया से तो पर्दा हटता है। नित्य गुरु-उपदेश पालन करते-करते मुहूर्त तुम पाओगे। हरएक मुहूर्त में शक्ति रहती है। एक में सब, सब में एक, इसीलिए तुम नित्य। इसी तरह एक ही प्वाइण्ट पर पड़ते-पड़ते, नित्य स्थिति रहते-रहते मनोराज्य का क्रिया हर समय करने को तैयार रहते हैं। हर समय उनकी चिन्ता अगर क्रिया ठीक-ठीक हो, भगवान तो नित्य रूप से हैं। बिना पकड़ाये से रहा नहीं जाये, लक्ष्य लेकर चलने से परिवर्तित हो जाओगे, स्थिति जागृत हो जायेगी, नित्य वस्तु का एक लक्ष्य होकर पालन, उसके बीच में उपेक्षा का भाव आयेगा। लेकिन नित्य तत्व को लेकर रहोगे तो जरूर प्रकाश होगा।

माँ अपने लिए बोलीं—रास्ते का जो भिखारी होता है, महान् लोग उस पर सदा ही कृपा, दया, आदर करते हैं, बाबा इस शरीर का जो ऊटपटांग रहता है।

गौरी शास्त्री—कब से ऊटपटांग शुरू कर दिया ?

माँ—जब से शरीर देखा है। जैसा बाबा वैसी बेटी। पंडित किसे कहते हैं? बाबा, जो पंडा बने नहीं रहते, वही पंडित। हे भगवान! तुम्हारी कृपा बिना कुछ नहीं होता। श्रोता बनकर ज्ञान रूप से वर्षण दे रहे हो। उनका खेल उनकी लीला नहीं है, वहीं हैं, वही हैं उनके सिवाय कोई नहीं है।

प्रश्न—संयम के लिए जो तुमसे प्रेरणा है, यह क्या संयोग से है।

माँ—संयम बाध न अबाध, संयम किसमें नहीं। संयमित जीवन बिना होता नहीं।

प्रश्न—ध्यान का स्वरूप बताएँ ?

माँ—अपना-अपना गुरु जो तरीका दें, उसी तरह ग्रहण करना। लक्ष्य को सामने रखकर उसी भावना से गुरु उपदेश पालन। बैठने की

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्थिरता पहली बा, उस दिन भी कहा। आसन बिल्डिंग का फाउन्डेशन उसके ऊपर चाहे जितना उठाओ, भगवान के राज्य का ऐसा सुन्दर विधान, यह जो संयम करने लोग बैठते हैं, इसमें ऐसा हो, सरल भाव से गुरु ने जो दिया, उसे लेकर बैठने से गुरु ने जो बताया, वह तरीका खुलेगा। ध्यान तो अपने आप होता है। प्रणाली होने के लिए हैं। जो ठीक-ठीक सहज शरीर रहे, सरल सीधा लक्ष्य लेकर बैठे लक्ष्य से बना लेते हैं, क्यों? शरीर यन्त्र है न—भगवान जैसा चलाते हैं चलता है। भगवान की लीला खेल है, लक्ष्य क्यों? जहाँ से प्रकट हुआ, उसके प्रकाश के लिए बैठने से आसन में रस आता है। पीछे जो तरीके से बैठने से लक्ष्य खुलेगा, अपने आप होता है। शरीर में अपने आप क्रिया होता है। निष्क्रिय होने के लिए क्रिया नित्य है, अव्यक्त है, व्यक्त है अनन्त है, उस स्थिति में आ जायें तो अपने आप होता है। धीरज लाना चाहिए। खुजली, खांसी, दर्द आदि। जो पर्दा ऐसा लगा उसे ध्यान प्रकाश से धीरे-धीरे दूर करना चाहिए।

प्रश्न—सेवा कैसा हो?

माँ—असली सेवा तो मन से होती है।

प्रश्न—सेवा-क्रिया कहां से आया?

माँ—बच्चों की सेवा जैसा मां करती है।

३–११–७९

आज का मातृ-संत्संग का संचालन श्री गौरीनाथ शास्त्रीजी नें किया।

प्रश्न—हम लोग चाहते हैं तुम्हारी सेवा हो, तुम क्या चाहती हो। हम लोगों का संग हो?

माँ—यह शरीर कहा उस दिन, अभी ख्याल नहीं है। सूरतगिरि के संयम-सप्ताह में जो देखा, उसी दिन एक समय में एक बालक पीला-पीला वस्त्र पहने है, ज्यादा लम्बा नहीं है, हमारे पास आकर खड़ा हो गया। उस समय दरवाजा बन्द करने का हटो-हटो बात हो गयी। हमने कहा आओ। फिर स्पष्टतया वही नर्मदा तट में देखा, ध्वनि रूप में शब्द रूप में। यहाँ पर जब उपनिषद् व्याख्यान हो रहा था, ठीक-ठीक वही देखा। टेढ़ा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होकर भी देखा उधर, अगर ख्याल हो जाता, ऐसे आ जाओ—आ जाओ के लिए उधर से इशारा किया। वह उधर से आया भी और बीच के दरवाजे में आकर वहाँ बैठ गया सीधा। उसने भी हाथ जोड़ा, मैंने भी हाथ जोड़ा। मौका देखकर खड़ा हो गया। भाषण होता रहा, मैं देखती रही। उस दिन जो पूछा, उसका उत्तर आज आया।

प्रश्न—स्वरूप प्रकाश के समय परा भक्ति का भी प्रकाश होता है ?

माँ—ज्ञान जो स्वयं कहा ज्ञान स्वरूप भक्ति का रूप गायब होने से ज्ञान का प्रकाश कैसे होगा ? भाषा दो है।

प्रश्न—आपका सबसे प्रिय होना चाहता हूँ क्या करूँ ?

माँ—कुछ लक्षण अपने आप आने दो। माँ संयम आपने करवाया—माँ ने करवाया यह बात है ? इसके बीच में एक बात है। यह शरीर किस तरह भगवान के तरफ मन हो, योगीभाई ने कहा था कि माँ हम सब भाई बहन मिलकर माँ के सामने ध्यान जप आदि करें। इस तरह संयम महाव्रत शुरू हुआ। सब महात्मा लोग दया कर रहे हैं। कृपा कर रहे हैं, आदर कर रहे है, उनकी कृपा वर्षण।

एक बालक के आग्रह पर माँ ने बालक और सेठ की कहानी सुनाई। प्रायः नित्य ही मातृ-सत्संग के बाद महात्माओं के आग्रह पर श्री श्री मां के श्रीमुख से सुमधुर कीर्तन सुनने को मिलता है।

□

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

माँ के श्री चरणों में

—श्री जयनाथ कौल—

हे मोहिनी मां आनन्दमयी, भय भञ्जनि मां, भवतारणि मां।
हे सर्व जगत आधार विभु, हे ज्योति स्वरूपिणि अम्बे मां ॥१॥

हे तत्त्व सनातन सर्वगतः, श्री जानकी राधा गौरी रमा।
हे प्राण सखा, अन्मोल रतन, हे ब्रह्ममयी समदर्शनि मां ॥२॥

हे मातु अमर, अव्यक्त, अचल, आकार रहित, न नाम न गुण।
बुद्धि से परे और भी बनीं, भक्तों के लिए साकार सगुण ॥३॥

भयभीत दुःखी संसार में हैं श्री चरणों में जिनकी प्रीति नहीं।
तुम पर है भरोसा पूरा जिन्हें कब दुःख है उन्हें लव लेश कहीं ॥४॥

है प्रेम मगर इक देन कि जो, मिलता है उसे तुम दे दो जिसे।
मैं यन्त्र तुम्हारे हाथ का हूँ, चलता हूँ चलाओ जैसें इसे ॥५॥

अब मां यह विनय स्वीकार करो, करता यह अधम जयनाथ है जो।
होता है तुम्हारे हुक्म से सब, विश्वास अटल यह दान करो ॥६॥

हर हुक्म का फिर उद्देश्य सदा, है रक्षा हमारी सच्ची सही।
इस ज्ञान से सबको कृत्य करो, कि राह है निर्भय पद की यही ॥७॥

□

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

माँ

—श्री अमृतपुत्र—

जननी जो नयन-घट-प्यार-जल छलके,
उतर जाये अन्तर में हलके-हलके।

धो दे कलुष-क्लेश-कल्मष जीवन-क्रन्दन,
शान्ति-दान्ति-स्नेह-कान्ति-करुणा झलके।

वरद हस्त शीश धर धन्य कर जीवन यह,
पर्वत-सा अहंकार बह जाए गलके।

शुभ-अशुभ, हर्ष-शोक, मान-मोह द्वन्द्व-बंध,
मिट जाए अन्तर्द्वन्द्व जीवन-पल-पल के।

अहत हो चारु चमक दिव्य दमक दमके,
स्वार्थ,द्वेष, कुटिल वेश नष्ट हो जलके।

साधना-सुगन्ध सुगम शुभ ज्योति जागे,
अमृत पुत्र-जीवन में अमृतरस ढलके।

□

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दर्शन-समीक्षा

[पूर्वानुवृत्ति]

॥ ४ ॥

न्याय दर्शन में प्रमाण विचार

—श्री हरिओम् सिंह—

वैशेषिक ने मूलतः जहाँ वस्तुगत यथार्थ और उसके विविध पक्षों की विवेचना की, वहाँ न्याय ने अपना ध्यान यथार्थ के सम्बन्ध में ज्ञान की समस्या के अन्वेषण पर केन्द्रित किया। 'न्याय' शब्द की व्युत्पत्ति है—'नीयते विवक्षितार्थः अनेन इति न्यायः।' जिस साधन से हम अपने विवक्षित (ज्ञेय) तत्त्व के पास पहुँच जाते हैं, उसे जान पाते हैं, वही साधन 'न्याय' है।[1]

वात्स्यायन ने इसकी परिभाषा यह कह कर की है कि न्याय—"तार्किक प्रमाण के नियमों के द्वारा ज्ञान की वस्तुओं की आलोचनात्मक परीक्षा है।" इस प्रकार, ज्ञान का सिद्धान्त न्याय-दर्शन का सबसे मूल्यवान अंग है।

ज्ञान का अर्थ है विषयों की अभिव्यक्ति या प्रकाशन।[2] जीव मात्र का समस्त व्यवहार ज्ञान पर ही निर्भर है। यह आत्मा का एक विशेष गुण है। अपने ज्ञान का मानस-प्रत्यक्ष होता है और दूसरे के ज्ञान का अनुमान क्रिया के प्रत्यक्ष से प्रयत्न का, प्रयत्न से इच्छा का और इच्छा से ज्ञान का अनुमान। अन्तरिन्द्रिय मन से प्रत्यक्ष होने के कारण ही यह आत्मा का विशेष गुण माना जाता है। ज्ञान स्वप्रकाश-आत्म-सम्वेदन नहीं है।[3] इसका प्रकाश विषयों (आब्जेक्ट्स) पर निर्भर है।

निम्नांकित रेखा-चित्र में न्याय दर्शन के अनुसार ज्ञान के भेद-प्रभेदों का उल्लेख है—

---

१. तुलना कीजिये प्रमाणैर्स्थ—परीक्षणं न्यायः।—न्या० भा०, १।१।१।

२. अर्थप्रकाशो बुद्धिः।—न्या० लो०, पृ० ७६०।

३. विज्ञानमनात्मसवेदनम्।—ता० टी०, पृ० ४।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

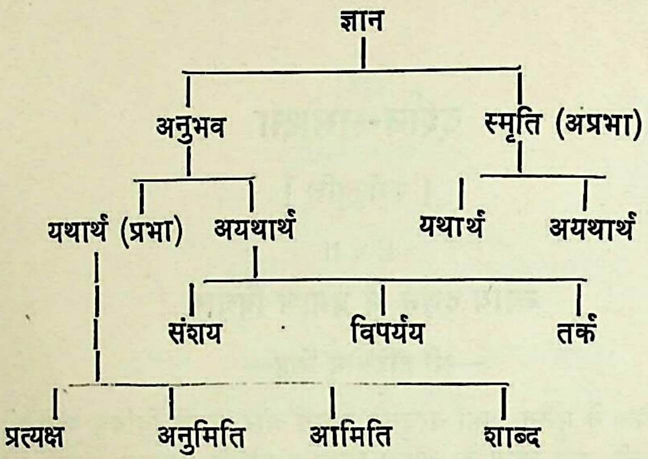

महर्षि गौतम ने पहले सूत्र में कहा है—'प्रमाण-प्रमेय-संशय-प्रयोजन-दृष्टान्त-सिद्धान्तावय-तर्क-निर्णयवादजल्प-वितण्डा - हेत्वाभासच्छलजाति-निग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निः श्रेयसाधिगमः १।१।१ ।। अर्थात् (१) प्रमाण, (२) प्रमेय, (३) संशय, (४) प्रयोजन, (५) दृष्टान्त, (६) सिद्धान्त, (७) अवयव, (८) तर्क, (९) निर्णय, (१०) वाद, (११) जल्प, (१२) वितण्डा, (१३) हेत्वाभास, (१४) छल, (१५) जाति तथा (१६) निग्रह-स्थान के (उक्त सोलह प्रकार पदार्थों के) तत्त्वज्ञान से निःश्रेयस प्राप्त होता है।[1]

प्रश्न है कि प्रमाण किसे कहते हैं। प्रमाण शब्द वस्तुतः प्र पूर्वक 'मा' धातु से करणवाच्य में 'ल्युट' प्रत्यय से सिद्ध है प्र पूर्वक मा धातु का अर्थ है—प्रकृष्ट ज्ञान। वह प्रकृष्ट ज्ञान दो प्रकार है—अनुभूति और स्मृति। प्रमाण शब्द की व्युत्पत्ति से प्रकृष्ट अनुभव का कारण समझा जाता है। यानी जिससे जिस विषय की यथार्थ अनुभूति होती है, वही उस विषय से प्रमाण पदार्थ है। प्रमाणों की संख्या के विषय में प्रायः सभी दर्शनों में कुछ-न-कुछ विचार किया गया है। चावार्क केवल प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानते हैं। वैशेषिकों के लिए भी प्रमाण ये ही है। माध्व लोग (द्वैतवादी) प्रत्यक्ष और शब्द को लेते हैं। रामानुजीय, पातंजल

१. डॉ० सतीशचन्द्र चटर्जी द्वारा—'न्याय थिअरी आफ गलण' के पृष्ठ २२ पर किये गये ज्ञान के वर्गीकरण में स्मृति को अप्रभा के बाहर रखना अनुचित और सम्प्रदाय विरुद्ध है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तथा जरन्नैयायिक (प्राचीन नैयायिक) प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द से संतुष्ट हैं। दूसरे नैयायिक प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान तथा शब्द को प्रमाण मानते हैं। माहेश्वर दार्शनिक भी यही कहते हैं। इनके साथ अर्थापेत्ति को लगाकर गुरू मीमांसक पाँच प्रमाण तथा अभाव को भी मिलाकर छह प्रमाण मानने वाले भाट्ट-मत के मीमांसा एवं अद्वैतवादी लोग हैं। सम्भव तथा ऐतिह्य को भी मिलाकर आठ प्रमाण मानने वाले पौराणिक लोग हैं। तान्त्रिक लोग चेष्टा को भी प्रमाण मानकर संख्या नौ तक पहुँचा देते हैं। यहाँ पर नैयायिकों के प्रमाणों को समझ लेना अपेक्षित है—

'न्यायसूत्र' में सोलह ज्ञेय पदार्थों की गणना की गयी है, जिनमें 'प्रमाण' प्रथम और मुख्य है। प्रमाण के अधीन ही सबका तत्त्व-ज्ञान है। न्याय शास्त्र के अनुसार प्रमाण चार हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान उपमान और शब्द।

[क] प्रत्यक्षः

'इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नंज्ञानमव्यपदेश्यमव्याभचारिव्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्। इसके सूत्र के इन्द्रिय शब्द से घ्राण रसना, चक्षु, त्वक्, श्रोत्र तथा मन ये छः इन्द्रियों को समझी जानी चाहिए। अर्थ शब्द से उन सब इन्द्रियों का ग्राह्य अलग-अलग विषय समझना चाहिये। इन्द्रिय के द्वारा ग्रहणीय विषय के साथ त्रुटिहीन नहीं रहेगा। इसी प्रकार मस्तिष्क यदि अशांत है अथवा किसी अन्य विषय पर केन्द्रित है तो भी निरीक्षण में गलतियाँ होंगी, इत्यादि। गौतम ने अपनी प्रणाली में ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया के लिए इन बातों को भी आवश्यक माना। जैसे संशय, दृष्टान्त, तर्क, वाद, प्रमेय, हेत्वाभास, वितण्डा और खण्डन इत्यादि। इन पदार्थों को चिन्तन का साधन बताया गया जिनके द्वारा त्रुटियों और भ्रमों पर पार पाया जा सकता है और वास्तविक सत्य तक पहुँचा जा सकता है। उदाहरण के लिए, उन्होंने कहा कि "संशय जो किसी वस्तु के वास्तविक स्वरूप के बारे में वैरुध्यपूर्ण निर्णय है, कितनी ही वस्तुओं में समान रूप से व्याप्त गुणों को जानने से, अथवा उन गुणों को जानने से जो किसी भी वस्तु में समान नहीं हैं, परस्पर विरोधी साक्ष्यों, और निरीक्षण तथा अनिरीक्षण की असंगति से उत्पन्न होता है।" कुछ लोगों के अनुसार प्रत्यक्ष के भेद अग्रवर्णित ढंग से होते हैं—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

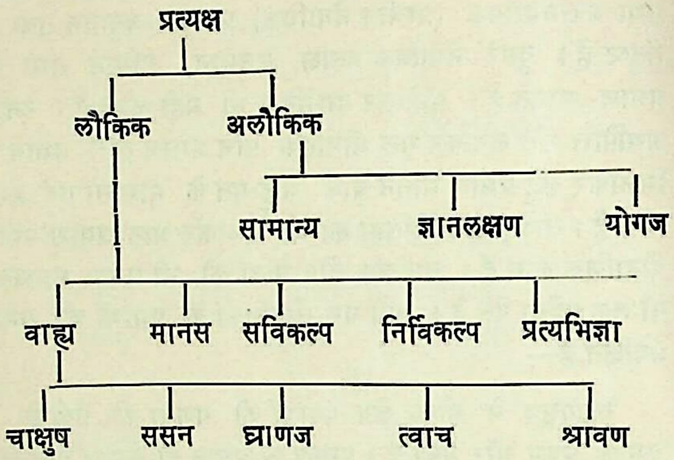

उसके इन्द्रियग्राहक विशेष का जो सन्निकर्ष सम्बन्ध विशेष, वही इन्द्रियार्थसन्निकर्ष है। उक्त इन्द्रियार्थसन्निकर्ष से जो अव्यभिचारी ज्ञान यानी यथार्थ ज्ञान उत्पन्न होता है उसी का नाम प्रत्यक्ष प्रमा है।

इन्द्रिय तथा अर्थ के सन्निकर्ष से उत्पन्न, अव्यपदेश्य, अव्यभिचारी और व्यवसायात्मक ज्ञान प्रत्यक्ष प्रभा है—यह न्यायसूत्रकार गौतम की परिभाषा है।[1] के० दामोदरन के अनुसार इस प्रकार, इस तरह के अनुभव में चार तत्व सामने आते हैं ?—अर्थात्–इन्द्रिया, अर्थ अथवा जिस वस्तु का ज्ञान द्राप्त करना है, सन्निकर्ष अथवा उस वस्तु से इन्द्रियों का सम्पर्क और इस सम्पर्क से उत्पन्न ज्ञान। किन्तु, न्याय के अनुसार निरीक्षण अथवा अनुभव, ज्ञान की प्रक्रिया का आरम्भ मात्र होता है, क्योंकि किसी वस्तु को देखना ही उसका ज्ञान प्राप्त कर लेना नहीं होता। किसी वस्तु के बारे में सही ज्ञान करने के लिए गौतम ने ये बातें जरूरी बतायी हैं (एक) वह वस्तु जिसका ज्ञान प्राप्त करना है, (दो) बाह्य उपकरण (उदाहरण के लिए, अंधेरे में प्रकाश की आवश्यकता), (तीन) इन्द्रियाँ (जो अनुभव प्राप्त करने के लिए जरूरी हैं), (चार) मस्तिष्क (जिसके बिना इन्द्रियाँ क्रियाशील नहीं होतीं) और (पाँच) निरीक्षक अर्थात् ज्ञान प्राप्त करने वाला। इनमें किसी एक के अभाव से भी गम्भीर गलतियाँ हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, प्रकाश के बिना किसी वस्तु को भली भाँति देखा नहीं जा सकता। इसी प्रकार यदि आँखें किसी रोग से पीड़ित हों, जैसे पीलिया से तो जो दिखाई देगा, वह प्राचीन आचार्यों

१. न्याय० सू०, १।१।४।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

के अनुसार, "इन्द्रिय और ज्ञेय पदार्थ के बीच सन्निकर्ष होने से उत्पन्न, शब्द के सम्पर्क से शून्य, संशय और विपर्यय से भिन्न ज्ञान प्रत्यक्ष प्रभा है" और वाचस्पति मिश्र आदि नवीन आचार्यों के मत में "इन्द्रिय और अर्थ के बीच सन्निकर्ष से उत्पन्न भ्रम—भिन्न निर्विकल्पक तथा सविकल्पक ज्ञान प्रत्यक्ष प्रभा है।" वात्स्यायन आदि ने सूत्र में निर्विकल्प तथा सविकल्प का उल्लेख यद्यपि नहीं माना है, तथापि प्रत्यक्ष ज्ञान के इन दोनों भेदों से वे असहमत नहीं है।

[ख] अनुमिति या अनुमान प्रभा

प्रत्यक्ष ज्ञान के बाद न्यायशास्त्र में परोक्ष ज्ञान की व्याख्या की गई अनुमिति, उपमिति और शब्द ज्ञान न्याय-दर्शन के परोक्ष-ज्ञान हैं। इसमें अनुमिति सबसे महत्वपूर्ण है।

अनुमान व्याप्ति-ज्ञान, पक्षधर्मता-ज्ञान, व्याप्ति-स्मरण और परामर्श के बाद उत्पन्न होने वाला परोक्ष-ज्ञान है। संक्षेप में, हेतु को किसी स्थान-विशेष में देखकर उसके व्यापक-साध्य का परोक्ष-ज्ञान अनुमान या अनुमिति है, जैसे-पर्वत पर धुंआ देखकर उसके व्यापक साध्य आग का परोक्ष ज्ञान अनुमान है। नीचे लिखे रूप में इसे स्पष्टतर किया जा सकता है—

(१) यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्र अभिः (व्याप्ति)
(२) पर्वतो धूमवान् (पक्षधर्मता)
(३) पर्वतो ग्निमान् (अनुमिति)

इस अनुमिति तक पहुँचने का जो साधन (करण, असाधारण कारण) हो वही अनुमान है। न्यायदर्शन में अनुमान के तीन भेद किये गये हैं—पूर्ववत्, शेषवत और समान्यतोजृष्ट। जहाँ कारण को देखकर कार्य का अनुमान हो, वह पूर्ववत् है जैसे मेघों को आकाश में गिरते देखकर वृष्टि होने का अनुमान जब कार्यं को देखकर कारण का अनुमान हो, वह शेषवत् है जैसे चारों ओर पानी ही पानी देखकर 'वर्षा हुई है' इसका अनुमान। सामान्य रूप से अनुमान करना कि जिस वस्तु को एक जगह देखा था, दूसरी जगह पर है तो वह वस्तु अवश्य चलती होगी। इस आधार पर अप्रत्यक्ष होने पर भी सूर्य की गति का अनुमान कर लेते हैं। दूसरे ढंग से भी इनका बिवेचन होता है जैसा कि वात्स्यायन ने किया है। नव्य नैयायिक अनुमान के दो भेद करते हैं—स्वार्थ और परार्थ। स्वार्थ का अभिप्राय हो जो एक व्यक्ति को अपने आप में संतुष्ट कर सके,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनुमिति करा सके। जब कोई व्यक्ति स्वयं ही बार-बार रसोईघर, कल-कारखाने आदि में देखकर व्याप्ति ग्रहण कर लेता है कि जहाँ धूम है, वहाँ अग्नि होती है तब पर्वत के पास जाकर वहाँ की अग्नि के विषय में सन्देह होने पर, पर्वत में धूम देखकर व्याप्ति का स्मरण करता है कि जहाँ धूम है, वहाँ अग्नि होती है। तब यह ज्ञान (लिंग-परामर्श) उत्पन्न होता है कि अग्नि के द्वारा व्याप्य धूम से युक्त (वह्निव्याप्यधूमवान्) यह पवत है अन्त में यह ज्ञान होता है कि पर्वत अग्नि से युक्त है। यही स्वार्थानुमान है। जब स्वयं धूम से अग्नि का अनुमान करके दूसरों को समझाने के लिए पाँच अवयव-वाक्यों का प्रयोग किया जाय तो उसे परार्थानुमान कहते हैं।

[ग] उपमान प्रमाण

तीसरे प्रमाण उपमान का लक्षण बतलाते हुए गौतम कहते हैं—'प्रसिद्ध-साधर्म्यात् साध्य-साधनमुपमानम्' १।१।६। जो पदार्थ पहले ही यथार्थ रूप से ज्ञात है उसे प्रसिद्ध पदार्थ कहते हैं। जो पदार्थ पहले अज्ञात है, वह साध्य पदार्थ है। किसी पदार्थ में किसी प्रसिद्ध पदार्थ के सादृश्य के प्रत्यक्ष से उत्पन्न किसी साध्य की सिद्ध में जो करण है अर्थात् जिससे उस अतीन्द्रिय साध्य पदार्थ की यथार्थ अनुभूति होती है, वह उपमान प्रमाण है। उपमान प्रमाण से होने वाली जो अनुभुति उसका नाम उपमिति है। गवय जानवर में गाय का लक्षण गल कम्बल नहीं हैं, किन्तु गाय के बहुत से सादृश्य हैं। नागरिक ने गवय पशु को देखा नहीं है, लेकिन किसी अरण्यवासी ने उनसे कहा कि गवय जानवर गाय के सदृश है। पश्चात् किसी समय में वे शहर के रहने वाले गवय पशु को देखकर उसमें गाय के सदृश्य का प्रत्यक्ष करने पर बाद में ही उनको पूर्व-श्रुत उस अरण्यवासी के वाक्य के अर्थ का स्तरण होता है और उससे परक्षण में गवत्य विशिष्ट पशु मात्र में गवय शब्द की वाच्यत्य रूप शक्ति का निश्चय होता है।'[1]

---

१. मीमांसक एवं वेदान्ता संप्रदाय उपमान प्रमाण को मानता है किन्तु गवयत्व विशिष्ट पशु में गवय शब्द के वाच्यत्व बोधक उपमान का फल उपमिति को नहीं मानता है। मीमांसाचार्य भाष्यकार शवरस्वामी एवं वार्तिकार कुमारिल भट्ट आदि के मत में इस स्थल में गवय पशु में गाय के सादृश्य के प्रत्यक्ष होने पर वह पूर्वदिष्ट गाय इस गाय के सदृश्य हैं—इस तरह

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

[घ] शब्द

यथार्थ वक्ता (आप्त) के द्वारा उच्चरित वाक्य ही शब्द है जैसे वेद के वाक्या या भूगोल में कहे गये वाक्य। न्यायसूत्र में शब्द के दो भेद किये गये हैं—दृष्टार्थ शब्द और अदृष्टार्थ शब्द। जब आप्तवाक्य की संगति इस संसार के तथ्यों से बैठाई जा सके जैसे यह कहना कि साइबेरिया में बर्फ जमी हुई रहती है। तब उसे दृष्टार्थ शब्द कहते हैं। किन्तु आप्तवाक्यों में परलोक की बातों का ज्ञान होने पर उसे अदृष्टार्थ कहते हैं। इस प्रकार लौकिक वाक्यों और ऋषि के वाक्यों में भेद किया जा सकता है। इसे ही लौकिक और वैदिक भी कहते हैं।

[ङ] समीक्षा

इन प्रमाणों से ही प्रमेयों का ज्ञान तथा परीक्षण होता है। न्याय में प्रमाण शास्त्र पर बहुत अधिक जोर दिया गया है। नव्यन्याय तो विशुद्ध प्रमाणशास्त्र ही है। प्रमाणों के विषय में जितना विश्लेषण भारतीय दर्शन में हुआ है विश्व के किसी भी दर्शन में मिलना असम्भव है—न्याय का यो यह विषय ही है। अन्य दर्शन इस दृष्टि से न्याय के ऋणी हैं। अपने विषयों के प्रतिपादन के लिए न्याय के कितने ही शब्द अन्य दर्शनकारों ने लिए हैं। इस दृष्टि से यदि न्यायदर्शन को 'दर्शनों का दर्शन' कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। न्यायदर्शन का सबसे बड़ा महत्त्व यह है कि उसने प्रत्यक्ष ज्ञान को सही ढंग से समझने और उसकी जाँच करने के लिए, भौतिक, परिवर्तनशील यथार्थ को पूर्णतः समझने के लिए तर्क और द्वन्द्ववाद का प्रयोग किया।

न्यायशास्त्र का ज्ञान-विषयक विश्लेषण और इसका 'स्वरूप-सम्बन्ध'-विषयक मत ज्ञान में वास्तविकता की उपस्थिति के सिद्धान्त का समर्थन

से उन गो पदार्थ में प्रत्यक्ष दृष्ट गवय के सादृश्य का ज्ञान होता है। यही उपमान प्रमाण का फल उपमिति है। यही पूर्वदिष्ट गाय के प्रत्यक्ष नहीं होने से उसमें गवय के सादृश्य का प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है। किन्तु नैयायिक आदि अनेक सम्प्रदायों के मत से पूर्वदिष्ट गाय में गवय का सादृश्य बोध वही स्मरणात्मक ज्ञान है। वह गाय का गवय सदृश है। इस तरह से पूर्वदिष्ट गाय का स्मरण होता है। यह उपमान प्रमाण का फल नहीं है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करते हैं। निर्विकल्प तथा सविकल्प ज्ञान का भेद भी यह संकेत करता है कि हमारा ज्ञान हमारे प्रयोजन की अपेक्षा करता है।

यद्यपि राहुल के अनुसार शब्द-प्रमाणकों के सिद्ध करने से पक्षपाद का मुख्य मतलब है, वेद, ऋषि-वाक्यों को प्रत्यक्ष अनुमान के दर्जे का एक स्वतन्त्र प्रमाण मनवाना। इसलिए उन्होंने जहाँ प्रत्यक्ष अनुमान, उपमान की परीक्षाओं में क्रमशः १३२ और ४ सूत्र लिखे हैं, वहीं शब्द प्रमाण की परीक्षा में सबसे अधिक यानी २२ सूत्र लिखे हैं, जिनमें अंतिम १२ सूत्रों का ढंग तो करीब-करीब वही है जिसका अनुकरण पीछे जैमिनि ने अपने मीमांसा-सूत्रों में बड़े पैमाने पर किया है।

(क्रमशः)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एक दर्शन की स्वीकृति

—श्री एस० एन० सोपारी—

सितम्बर, सन् १९५२ की बात है। चार वर्ष की पोस्टिंग के बाद मेरा तबादला कलकत्ता से बम्बई के लिए हुआ। इस अवधि में मुझे पहले से कहीं अधिक अवसर माताजी के पास रहने का मिला।

मेरी पत्नी और मैं दोनों ही सोचने लगे कि अब न जाने कब और कैसे हम लोग पुनः इस प्रकार के अवसर प्राप्त कर सकेंगे। इस समय हम लोग ऐसी जगह जा रहे थे जो देश के बिलकुल दूसरे हिस्से में है और यह क्षेत्र श्री श्री माँ के भ्रमण क्षेत्र से बहुत दूर है।

मेरे बहुत से मित्र और स्टाफ के आदमी हवड़ा स्टेशन पर हमलोगों को विदाई देने के लिए माला और फूल लेकर आये थे। वह दृश्य ऐसा भावपूर्ण था कि हमलोग एक दूसरी दुनिया में विचरण करने लगे। हमलोग हर समय माताजी के बारे में सोचते रहे। हमलोग सोचते रहे कि यदि ये मालाएँ और फूल हमलोगों को देने के बजाय माताजी के चरण कमलों पर समर्पित किये जाते तो कितना अच्छा होता। गाड़ी चल पड़ी, हिलते हुए हाथ धीरे-धीरे आँखों से ओझल हो गये। लेकिन हमारे विचार माताजी के साथ रहे और हमलोगों ने दूसरी कोई बात नहीं की। हमलोगों ने इलाहाबाद होकर बम्बई जाने का लम्बा रास्ता अपनाया, क्योंकि मेरी पत्नी को इलाहाबाद में उतरना था। हमलोगों ने सुना था कि माताजी मिर्जापुर के पास विन्ध्याचल में कहीं हैं। मेरी पत्नी का प्रोग्राम इलाहाबाद से विन्ध्याचल जाने को था और उसके बाद अपनी बीमार बहन को देखने गोरखपुर जाना था।

दूसरे दिन जब हमारी गाड़ी मिर्जापुर पहुँची जहाँ विन्ध्याचल के लिये मेल गाड़ी का सबसे करीब स्टापेज था। वहाँ पर माताजी के दर्शन करने की तीव्र इच्छा जाग्रत हुई। मेरा मन हुआ कि नीचे उतर जाऊँ और चारों ओर देखूँ शायद माताजी स्टेशन पर भाग्य से मिल जाय। यह एक कल्पना थी, क्योंकि माता जी साधारणता कार द्वारा बनारस से विन्ध्याचल जाया करती थीं।

शीघ्र ही ट्रेन मिर्जापुर से छूटी और थोड़ी ही देर बाद लाईन के उस

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्थान पर पहुँच गयी जहाँ से विन्ध्याचल दिखायी दे रहा था अथवा जहाँ से आश्रम देखा जा सकता था जो बहुत दूर एक पहाड़ी की चोटी पर था।

मैं इतना उत्तेजित हो उठा कि कम्पार्टमेण्ट का दरवाजा खोल दिया और हैण्डिल पकड़ कर इस तरह खड़ा रहा जैसे आश्रम को देखना बहुत सहज और स्पष्ट हो, खिड़की से देखना पर्याप्त न हो। इतने में एक गजब का चमत्कार हो गया। माताजी के दर्शन की प्रबल इच्छा पूरी हुई। यह काल असाधारण और आशातीत ढंग से हुआ। मेरे सामने दाहिनी ओर आश्रम से बहुत नीचे पहाड़ी के सबसे नीचे वाले भाग में मैंने माताजी को देखा। दिन की तेज रोशनी में मेरी ओर मुंह किये हुए माताजी को बहुत ही स्पष्ट रूप से देखा उनके साथ आश्रमवासियों का एक दल था, उन लोगों को मैंने पहचान लिया। इतने दिनों के बाद मुझे उन सबका नाम याद नहीं है। लेकिन नारायण स्वामी जी, बुनीदी और कुछ दूसरे लोग थे। मैं इतना प्रसन्न और उमंग में था कि प्रणाम करना भूल गया। इसके बावजूद मैं कम्पार्टमेन्ट के भीतर गया वर्थ पर पड़ी हुई एक तौलिया उठा लाया और माताजी को अपनी उपस्थिति दिखाने के लिए इसे जोर-जोर हिलाने लगा। इस घटना ने मुझे कुछ देर के लिए चकित कर दिया। किसी तरह से माताजी का बहुत स्पष्ट दर्शन मुझे हुआ। उस समय इस बात पर तनिक भी ध्यान नहीं गया कि पहाड़ी का सबसे निचला भाग भी ट्रेन से काफी दूर था। सामान्य अवस्था में वह साफ-साफ नहीं दिखाई देता।

मेरी पत्नी ने कुछ नहीं देखा, इसलिए मैंने उसे हरेक चीज समझायी। साथ ही साथ सारी कहानी एक पत्र में दीदी के नाम लिखा। उस पत्र को मैंने दीदी जी को देने के लिए पत्नी को दिया। पत्र में मैंने यह भी लिखा कि अपने दर्शन और आशीर्वाद से माताजी ने अपार दयालुता दिखाकर मुझे कृतार्थ कर दिया। असामान्य परिस्थिति में असाधारण ढंग से यह कार्य बिल्कुल असम्भव था।

बहुत दिनों बाद मुझे यह भी मालूम हुआ कि माताजी अपनी महान करुणा से न केवल अपना दर्शन देने की कृपा की बल्कि मुझे आशीर्वाद देने का भी ख्याल रखा। जिस नये स्थान पर मैं जहाँ रहा हूँ, वहाँ पर मेरे सारे प्रयत्नों में उनकी कृपा बनी रही। मैं अपनी कम्पनी के हेड आफिस आया। वहाँ पर मेरे लिए जो नया काम था वह एक चुनौती

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

थी। माँ की कृपा से मैं योग्य प्रमाणित हुआ। मेरी पदोन्नति सबसे ऊँचे पद पर हुई। इससे भी अधिक एक और मुख्य बात हुई। माताजी का ख्याल और कृपा मेरे ऊपर हुई थी। श्री श्री आनन्दमयी संघ में मेरी सेवा से सम्बन्धित। मैंने बंम्बई में १९५४ ई० का संयग-सप्ताह मनाने पर जोर दिया जो बहुत ही कठिन काम था। उन दिनों बम्बई में बहुत कम भक्त थे। मूलजी भाई और नन्दूभाई देसाई और कुछ लोग थे। यह बिलकुल और एक बारगी माताजी की कृपा थी जिससे बम्बई में सप्ताह का आयोजन सम्भव हुआ और वह इतना सफल हुआ कि बहुत से महात्मा और दूसरे सदस्य आज तक याद करते हैं। माताजी हमलोगों के साथ तीन सप्ताह तक वहाँ रुकी रहो। पूरे सप्ताह भर लगातार माताजी का ठहरना एक रिकार्ड था। बहुत से नये भक्त माताजी के पास आये। जिनमें श्री बी० के० साह, श्री डी० आई० कानियाँ आदि प्रमुख हैं। इस नये ग्रूप के भक्तों द्वारा माताजी और संघ की सेवाएँ अनुपम रही। इससे यह कहा जा सकता है कि बम्बई का १९५४ का संयम-सप्ताह संघ के इतिहास में एक बहुत प्रमुख घटना थी। संघ की उन्नति के लिए जिसने एक नयी दिशा प्रदान की। मेरे लिए यह माताजी का ख्याल था कि उन्होंने मुझे इस काम के लिए उसी समय चुन लिया था जिस समय उन्होंने अपना पुण्य-दर्शन दिया था जो मेल ट्रेन के साथ साठ मील प्रति घण्टा की चाल से मेरे साथ बम्बई तक आया। ■

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

योग और आद्या शक्ति

—कुमारी श्वेताम्बरी सहगल—

'योग' शब्द विश्वकोश को भारत की देन है। अन्य अनेक शब्दों की तरह इस शब्द की व्याख्या, परिभाषा, देश, काल तथा व्यक्ति सापेक्ष होने में अपरिमित विभिन्नता लिये हुए है। श्री भद्गवद्गीता के अष्टा-दश अध्याय एक-एक 'योग' का स्वरूप प्रस्तुत करते है। कर्मयोग, भक्ति योग तथा ज्ञानयोग की त्रिवेणी तो भारतवर्ष में सदैव प्रवाहित होती रही है। गणित में अंकों का 'योग' ज्योतिषशास्त्र में ग्रहों का योग, वैद्यक में औषधियों का 'योग' ही विशेष फल प्राप्ति का कारण होता है। इसके अतिरिक्त 'हठयोग' 'स्वरयोग' आदि शब्द भी 'योग' से सम्ब-न्धित है। भारत में उपलब्ध योग के विभिन्न स्तरों एवम् स्वरूपों की उत्कृष्ट झाँकियाँ Paul Brunton ने अपने सर्वप्रथम ग्रन्थ A Search in Secret India' में प्रस्तुत की हैं।

परन्तु 'योग' है क्या ? इसका साधारण रूढ़ अर्थ तो है 'जुड़ना जैसे, अंकों को जोड़ने से जो संख्या प्राप्त हो, वही उनका 'योग' होता है। इसी प्रकार ग्रहों का पारस्परिक सम्बन्ध ग्रहयोग है, तथा साधन विशेष के अवलम्बन से 'जीव' का ईश्वर-साक्षात्कार भी 'योग' है।

'योग' के परम आचार्य भगवान् पतंजलि 'योग' को 'चितवृत्ति-निरोध' बताते हैं। (योगाश्चित्त वृत्तिनिरोधः।) 'प्रमाणविषयविकल्प-निद्रास्मृत्यः 'इन पंचावृत्तियों के निरोध से निर्विचार स्थिति में आध्यात्म प्रसाद की उपलब्धि होती है, और प्रज्ञा 'ऋतम्भरा' हो जाती है। निर्वि-चार वैशारध्य ध्यात्म प्रसादः। पा० यो० १(४७)

(ऋतम्भरा तस्त्र प्रज्ञा) पा० यो० ? ४८

इससे उत्पन्न संस्कार अन्य संस्कारों के प्रतिबन्धक होते हैं तथा इन संस्कारों का भी बोध हो जानेपर 'निर्बीज समाधि' में स्थिति होती है, जो 'योग' का परमोत्कृष्ट स्वरूप हैं, अन्तिम फल है।

तज्जः संस्कोराडन्य संस्कार प्रति बन्धी। पा० यो० १.५०।

तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीज : समाधिः (पा० यो० १.५१)

"चित्त, जिसका निरोध यहाँ इष्ट हैं, क्या है ? 'वेदान्त के प्रकरण

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ग्रन्थ पंचदशी में स्पष्ट किया गया है 'संबिद् एका:'। जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति, इन तीनों अवस्थाओं में निर्विशेष, चिद् साक्षी स्वरूप से स्थित रहता है। 'दृश्य' के अभ्यास का आश्रय भी यही चिद् है। 'अनात्माश्रया हंममाध्यासहानात्, तदेको वैशिष्ट:शिव: केवलो हम्।')

यही विशुद्धि, निर्विकार, एकरस, साक्षीस्वरूप चिद् जब उपाधि-विशिष्ट होता हैं, तो "चिद्" बन जाता है। यही अन्त:करण" है। छान्दोग्य उपनिषद् में उद्दालक ऋषि श्वेतकेतु को समझाते हैं तथा प्रमाणित करते है कि अन्त:करण अन्न के सूक्ष्मतम तत्वों से निर्मित अतएव "जड़" है। फिर भी दर्पणवत् सूक्ष्मग्राही होने के कारण चेतनवत प्रतीत होता है।

'चिद्' निर्विकार है, 'चित्त प्रतिपल परिवर्तनशील। यही वह 'दुनिग्रहं चलं' है जिसे वशीभूत करने के लिए 'अभ्यास' और 'वैराग्य' 'योगदर्शन' तथा "श्रीमद्भागवत गीता" दोनों में साधनरूप से निर्दिष्ट हुए हैं।

"चित्त" को स्थिर करने का प्रयत्न ही अभ्यास है। (तत्र स्थितो यत्नोभ्यास:) तउा अभ्यास निरन्तर, सुदीर्घकाल तक श्रद्धापूर्वक किये जाने पर ही फलीभूत होता है।

सतु दीर्घकाल नैरन्तर सत्यकारा संवितोदृढ़भूमि:) पा० यो० १.१४ तथा दृष्टापुश्रविक वियायवितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्य: है

(पा० यो १.१५)

"चित्त" का (विशिष्ट, उपाधियुक्त प्रतीत होने वाले व्यक्ति रूप का।) चिद्रूप हो जाना ही "योग" है।

चिद् में जो चिद्भास हो रहा है वही उसका "दृश्य" है। द्रष्टा से दृश्य से संयुक्त होने पर अक्षय प्रपंच की प्रतीति होती है। "क्षप:क्षण: नवनवोन्मेषालिनी" प्रकृति, भगवती महामाया "उभ्दंवस्थिति संहारकारिणी" अपने अनन्त स्वरूपों में प्रकट होती है।

"दृश्य" पदार्थ का मूल स्वरूप आधुनिकतम विज्ञान की दृष्टि में क्या है ? जिन तथाकथित 'जड़' पदार्थों के चर्मचक्षुओं द्वारा ठोस, अचल आदि गुणों का बोध होता है, वे 'पदार्थ' भी वस्तुत: अपने मौलिक रूप में प्रतिपल परिवर्तनशील है। परमाणु नित्य क्रियाशील है, एवम् किसी एक परमाणु की विद्युत शक्ति (Ilectrons) धारा है अथवा कण (Wavci or parhcles) तथा किसी एक समय पर उसकी निश्चित स्थिति कहाँ हैं, यह बताना, सूक्ष्मतम यन्त्रों द्वारा भी सदैव असम्भव ही बना रहेगा,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

क्योंकि Electrono को कोटिशः विस्तृत (magrify) करके दृष्टिगोचर करने की प्रक्रिया (गामा—रे द्वारा) ही उनके स्वरूप को परिवर्तित कर रही होगी।

अतः जब 'पदार्थ' का मूल स्वरूप वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा जानना सदैव ही असम्भव रहेगा, यह सिद्ध हो चुका है निर्विवाद है तो 'दृश्य' भौतिक जगत् की सत्ता पर विज्ञान द्वारा ही ऐसा कुठाराघात हो चुका है, जो कालान्तर में सही हर बुद्धिमान् व्यक्ति को स्वीकार करना ही होगा।

हमारी भावनाएँ और प्रायः विचार भी इसी इन्द्रिय-जनित बोध से सीधे या परोक्षरूप से मौलिक सम्बन्ध रखते हैं। रूचिकर रूप, रस, शब्द, स्पर्श, गन्ध के प्रति अनुराग और इसके विपरीत होने पर उपरति या विरक्ति की अनुभूति होती है। प्रिय शब्दों के श्रवण, चिन्तन आदि से हर्ष, उल्लास तथा अप्रिय एवम् कटु शब्दों के श्रवण—चिन्तनादि से द्वेष, घृणा आदि उत्पन्न होते हैं। यही अन्य 'चक्षुओं के सम्बन्ध में भी है।

किन्तु जब विचार द्वारा यह सिद्ध हो जाता है कि दृश्य 'आभास' मात्र हैं तो तज्जनित भावनाओं एवम् विचारों को भी कोई मौलिक महत्त्व या अर्थ नहीं प्रतीत होता। तब तो यही अनुभव होता है।

'केशव, कहि न जाय, का कहिये ?
देखत तब रचना विचित्र अति, समुझि मनहि मन रहिये।
शून्य भीति पर चित्र, रङ्ग नहि, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोये मिटे न मरे भीति, दुख पाइय यहु तनु हेरे॥

इस 'परिणामतापसंस्कार' से तथा' गुगवृत्तिविरोध से दुःखप्रद प्रतीति का, आभास का कारण जब 'अविद्या' है तो प्रश्न यह उठता है कि अविद्या का कारण, प्रयोजन क्या है? क्यों यह चिद् ही वृत्तियों द्वारा बहिर्मुख होकर अनन्त सृष्टि की रचना करता है जो पुनः उसके एक अंश में स्थित है।

'विष्टम्याहमिदं—कृत्सनमेकांशेन स्थितो जगत्॥'

क्यों सच्चिदानन्द धर्म क्लेश की, दुःख की अनुभूति का आयोजन करता है?

इस सम्बन्ध में एक सुन्दर 'कथा' याद आती है। 'माया' भगवान् के सम्मुख जाने में संकोच का अनुभव करती है। पूछा जाता है, 'भई क्यों?' उत्तर मिलता है 'उनके जनों को सताती जो हूँ, उन्हें कष्ट देती हूँ न?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

किसी की आँख में तो काँटा चुभो दो और उसे पुष्पहार भी पहनाओ, ये दोनों बातें एक साथ कैसे हो सकती है ?' कहा 'तो भई, इसमें कौन बड़ी बात है ? संकोच हो रहा है, इतना तो मत सताओ उनके जनों को। सीधी सी तो बात है।' 'नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, सताऊँगी तो जरूर, और खूब सताऊँगी उनके जनों को जब तक वे पूर्णतया उन्हीं के उन्मुख न हो जायेंगे।' 'माया' ने उत्तर दिया।

राग-द्वेष के द्वन्द्व से उठकर, विचार द्वारा या पूर्ण आत्म समर्पण द्वारा एक तत्त्व में शुद्ध चित्त के लीन होने पर जो 'ब्रह्मसंस्पर्श होता है, उसमें तो 'माया' अति समति जोरे कर ठाढ़ी' दिखायी देती है। वस्तुतः आद्या शक्ति महामाया, परम करुणमयी माँ है, वह वात्सल्यमुखी 'उभ्द-वस्थितिसंहारकारिणी' ही नहीं, 'क्लेशहारिणी' भी है। अविद्या स्मिता-रागद्वेषमिनिवेषा क्लेशः 'सर्व श्रेयस्करी' ही है। भगवान् पतंजलि भी कहते हैं—

'भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यं।'

'गिरा अरथ जल बीचि सम' जो भिन्न कहलाते हुए भी यथार्थ में परमेश्वर से अभिन्न, नित्यसंयुक्ता रामबल्लभा श्रीजानकी जी हैं, कृष्णा-मृत का सार जो श्रीराधिका जी है, 'भव' की अधोगिनी 'शेलजा भवा-नी हैं, 'इ' कार स्वरूपिणीशिव की जो शक्ति है, जिनके बिना 'शिव' 'शव' रह जाता है, वही आद्या शक्ति परब्रह्म के 'आनन्दमय स्वरूप की अभिव्यक्ति का मूलभूत कारण है। ध्यान देने की बात है कि भारतवर्ष में देवी-पूजा का प्रचार तो स्वतन्त्र रूप से विहित है, परन्तु देवता के स्वरूप की प्रतिष्ठा एवम् आराधना शक्ति की उपासना के बिना नहीं की जाती।

राग-द्वेष के द्वन्द्व के, संघर्ष से, क्लेश से वासनाओं के विषाक्त जाल से जब अति जीव व्याकुल हो उठता है, तो 'जहाज के पंछी की तरह एक ही स्थान, एक ही ठौर उसे दिखायी देता है। 'जो अति आतप व्या-कुल होई।'

तरु छाया सुखजानई सोई ॥

उस आर्त हृदय में जब उत्कट पिपासा जागृत होती है तब उसका चातक चित्त स्वाति-बिन्दु के लिए अनन्यगति हो उठता है। हर्ष-विषाद, अनुकूलत्स-प्रतिकूलता, सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु, सभी में उसे तो बस एक श्रीहरि की इच्छा, उनका मंगलमय विधान, उनका प्रसाद ही दिखायी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

देता है। आनन्दानुभूति 'अहम्' के विपरीत परिणाम ही में होती है, और जैसे-जैसे जीवन का अन्तःकरण उस विराट, विश्वमोहिनी मूर्ति में विलीन होता जाता है, आनन्द की अनुभूति 'मन बुधि चित अहम्मिति' से ऊपर उठकर एकात्मता का रूप धारण कर लेती है। उसकी अनन्यता सृष्टि के हर रूप में हर कण में, सचराचर में, इष्टदेव के प्रेममय स्वरूप को आलम्बन बनाती हुई विभोर होकर दिव्यरसामृत का आस्वादन करती है।

सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमन्त।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवन्त॥

समस्त संसार "सीय राममय है"। सीताराम 'गिरा-अरथ जल वीचि सम' अभिन्न है। सर्वेश्वर, सर्वव्यापक परब्रह्म प्रेम ही से प्रगट होते हैं—

"हरि व्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेम ते प्रकट होई मैं जाना॥"

क्लेश त्रस्त जीव को जब जब परम संकर्षण के प्रबल आकर्ष की अनुभूति होती है, तो उसके चित्त के विकार भस्म होकर दिव्य-माधुर्य में उसकी सहज स्थिति हो जाती है तब 'माया' उसके लिये दुःखद नहीं रहती।

"सो माया न दुखद मोहि पाही।
आन जीव इव संसृति नाहीं॥

द्वैत का कारण जो 'माया' है, वही आद्या शक्ति भगवती, परम वात्सल्य से, परम धैर्य से, लीलामयी, रासस्वरूपिणी, "निज इच्छा लीलावपु धारिणी" योगमाया के रूप में, परम कल्याणी, शारदा एवम् अन्नपूर्णा स्वरूपिणी जगदम्बा हैं। उन्हीं श्री भगवती के प्रति आत्म-समर्पण करते हुए जगत्गुरु श्री शंकराचार्य जी कहते हैं—"गतिस्त्व गतिस्तवं त्वमेका भवानी।"

गोस्वामी तुलसीदास जी भी भगवान् राम की कृपा दृष्टि प्राप्त करने के लिए माता सीता से कहते हैं।

"कबहुक अम्ब अवसर पाई।
मेरिबो सुधि छायिबो कछु करुन कथा चलाइ॥"

सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी भूतभावन आशुतोष अवढरदानी भगवान् महेश की "विनय—व्यंगयुक्त" स्तुति माता पार्वती जी से करते हुए कहते हैं—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"बावरो रावरो नाह भवानी ।
निज घर की बरबात विलोकहु हो तुम परम सयानी ।
इनकी देई सम्पदा देखत श्रीसारदा सिहानी ।।
जिन रंकनह के भाल लिखी नहि सुख की एक निसानी ।।
तिन रंकन्ह को नाक संवारत हो आयो नकबानी ।।
यह अधिकार सौंपिये औरहि भीख भली मैं जानी ।।'.

षड़ानन "कुमार" भी भैया वक्रतुण्ड की शिकायत माँ भवानी से ही करते है—

"देखो अम्ब, ये हेरम्ब, मानस को तीर पर, तुन्दिल शरीर एक उधम मचाते गोद भरे मोदक धरे है, सविनोद उन्हें, सूंड़ से उठा के मुझे देने को दिखाते हैं, देते नहीं, कन्दुकन्सा ऊपर उछालते हैं, ऊपर ही झेल-कर, खेलकर खाते हैं।"

इसी परम शक्ति आद्या भवानी, दुर्गा की आराधना का पर्व है नव-रात्रोत्सव, जो भारतवर्ष के कोने-कोने में परम हर्षोल्लास एवम् श्रद्धा-भक्ति, अनुष्ठानादि से, कहीं रामलीला द्वारा कहीं रास-गरबा के माध्यम से, कहीं दुर्गा-पूजा के रूप में मनाया जाता है। खेद की बात है कि इस पर्व के सूक्ष्म एवम गूढ रहस्य को भुलाकर हम इसे सामाजिक तथा मनो-रंजन मात्र का निम्न स्तर देते जा रहे हैं। भगवती महायाया से यही प्रार्थना है कि वह इस देशवासियों को सद्बुद्धि तथा सत्प्रेरणा प्रदान करें, जिससे यह दिव्य पर्व जीवन के 'योग' साधन में सहायक हो सके।

■

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गुरुप्रिया दीदी के महाप्रयाण में

—कुमारी गीता बैनर्जी—

परम पूजनीया, परम आदरणीया, दीदी आज स्थूलरूप में हमारे मध्य नहीं हैं। गत १६ सितम्बर, मुक्ताभरण सप्तमी तिथि को, मुक्ति-क्षेत्र काशीधाम में, भागीरथी के परम पावन तट पर स्थित गोपाल मन्दिर में, प्रातःकाल आठ बजकर तिरपन मिनट पर माँ की अनन्य सेविका मातृसाधिका दीदी मातृचरणों में दृष्टि निबद्ध कर, मातृचरणों में ही चिरकाल के लिये विलीन हो गई हैं। अतः हम उनका पूत पार्थिव शरीर का अब दर्शन नहीं कर सकेंगे। परन्तु गैरिकवसन विभूषिता उनकी वह उज्ज्वल शान्त समाहित व्यक्तित्वपूर्ण आकृति तथा बालक सदृश मधुर मुसकान चिरकाल के लिए हमारे मानसपटल पर अंकित रहेगी।

पूज्य दीदी के महाप्रयाण के पश्चात् श्री श्री माँ ने जो कुछ कहा है उसे यहाँ उद्धृत करने का प्रयास कर रही हूँ। माँ ने कहा था–"दीदी का जो लक्ष्य था, जो लेकर आयी थी, उसे दिखा गयी। उसके भीतर जो था वही प्रकाशित हुआ। भाई जी माँ कहकर, अखण्डानन्द जी मौन रह कर, दीदी ठीक त्राटक जैसी गई। दीदी का काम दीदी करके चली गई। इस शरीर को जो करना था, किया। जिस स्थिति में जन्म उसी स्थिति में गमन हुआ। अस्वस्थ होने के बाद से इस शरीर का फोटो लेकर ही तो थीं। उसी ओर दृष्टि बाँधकर गई। दीदी साधारण तो नहीं थीं। अन्तिम समय में भी इसका परिचय दे गई। योगी की भाँति गमन हुआ।"

बाद में ज्ञात हुआ कि ठीक दीदी के ब्रह्मलीन होने के क्षण, श्री श्री माँ वृन्दावन में थीं। भागवत कथा हो रही थी। कृष्ण जन्म हुआ। आरति समाप्त हुई। माँ अचानक अपने आप ही बोल उठीं—"दीदी चली गई।" उस समय तक दीदी के महाप्रयाण की खबर वृन्दावन में नहीं पहुँची थी। इसी प्रकार परम पूजनीया गिरिजी भी भागवत् के कृष्ण जन्म दिवस पर ही ब्रह्मलीन हुई। इन दोनों महान् विभूतियों के महा प्रयाण के मूल में कौन सा गूढ़ आध्यात्मिक रहस्य छिपा हुआ है, यह श्री श्री माँ के अतिरिक्त और कौन जान सकता है?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

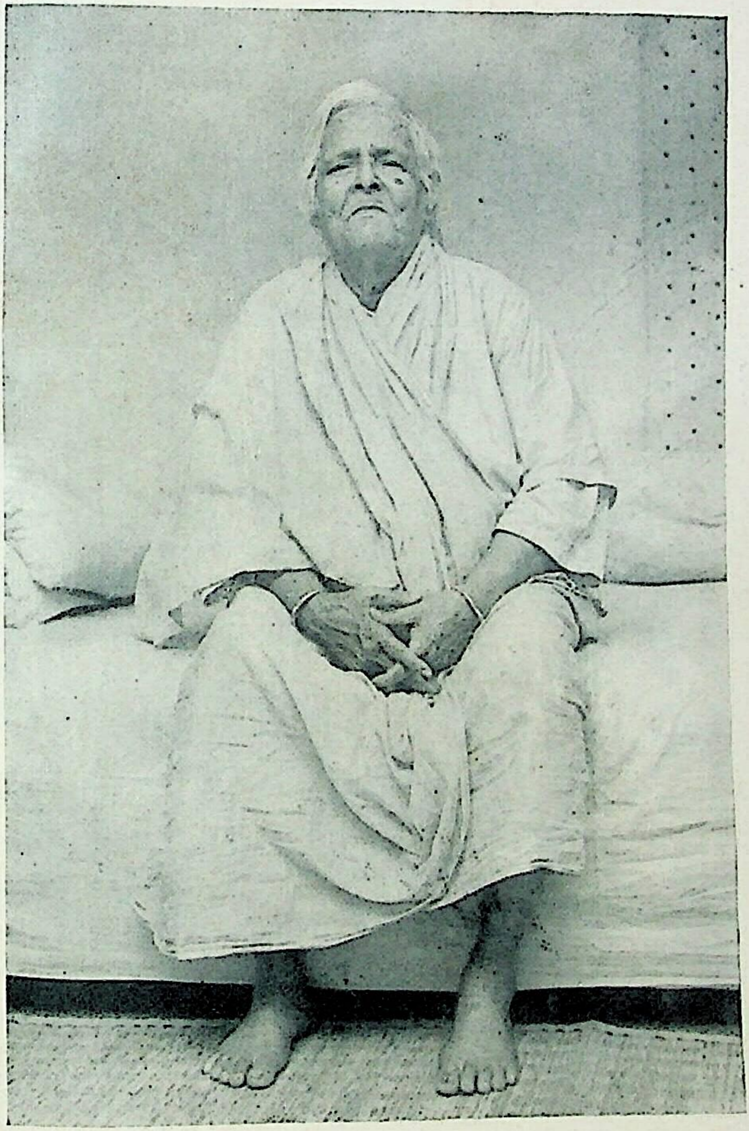

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दीदी के तिरोधान का समाचार पाकर माँ काशी रवाना हुई। दीदी के शरीर को बरफ में रखने के लिए कहा। माँ ने ट्रेन में ही पानुदा से कहा था "मुझे दीदी के पास नहीं ले जाना। तुम लोगों को जो करना है, करो।" प्रातःकाल दीदी को गोपाल मन्दिर से चण्डी मण्डप के सामने लाया गया। पूजा स्नान इत्यादि सम्पन्न कर बजरे में रख कर सलिल समाधि के लिए ले गये। उस वक्त माँ अपने घर में लेटीं थीं। ठीक सवा आठ बजे माँ ने उदास जी से समय पूछा' उदासजी ने कहा 'सवा आठ।' बाद में पानुदा ने आकर कहा कि ठीक सवा आठ बजे दीदी की सलिल समाधि हुई। माँ ने बिना देखे ही ठीक उसी क्षण उदास जी से समय पूछा था।

दीदी की सलिल-समाधि के विषय में माँ ने कहा—"भाई जी की तरह दीदी को भी मिला था। इस शरीर के पास ही तो सब समय रहती थीं। इस शरीर के मुँह से कुछ निकला। वह दीदी ने सुन लिया और कहा "मुझे प्राप्त हो गया।" तब मैंने कहा—गुरुप्रीति बोलूँ या गुरु-प्रिया ? प्रीति और प्रिया तो एक ही है न ? तो दीदी ने कहा "नहीं माँ, प्रिया ही रहे।" गुरुप्रियानन्दगिरि यही नाम हुआ। दीदी लोगों के सामने अपनी श्रेष्ठता दिखाना नहीं चाहतीं थीं। उस नाम को संक्षिप्त कर गुरुप्रिया देवी नाम हुआ। माँ के मुँह से सुनने के पहले यह तथ्य अज्ञात ही था।

माँ ने बृन्दावन में भी दीदी के संन्यास के विषय में पूज्य स्वामी परमानन्द जी से कहा—"दीदी ने इस शरीर से संन्यास मन्त्र प्राप्त किया था। अब तुम लोग जैसा ठीक समझो, संन्यासी की तरह करो।" पूज्य नारायणस्वामी जी के पत्र में भी माँ की वाणी है—"दीदी ने अखण्डानन्द जी (दीदी के पिता) से भी प्राप्त किया था।" इस प्रकार हम देखते हैं कि दीदी का बाल्यकाल से ही त्याग मय जीवन था और उन्होंने गुप्त रूप से संन्यास भी आज से बहुत वर्ष पहले ही ले लिया था। यहाँ दीदी की सलिल समाधि पर माँ एक बात बार-बार कह रहीं थीं—"प्रतिमा विसर्जन हुआ।" बृन्दावन में भी माँ ने कहा था कि "प्रतिमा विसर्जन कर आई हूँ।"

कोई-कोई यह सोच सकता हैं कि प्रायः विशिष्ट व्यक्तियों के अन्तिम समय पर माँ उपस्थित रहीं हैं जैसे भाई जी, गिरि जी, हरिबाबा इत्यादि। परन्तु दीदी के समय माँ उपस्थित नहीं रहीं, इसका उत्तर भी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रद्धेय नारायण स्वामी जी को कही हुई माँ की वाणी से ही प्राप्त हो सकता है। माँ ने कहा—"दीदी का अन्तिम समय देखना, इस शरीर की ख्याल नहीं हो रहा था। दीदी के साथ तो आत्मिक सम्बन्ध है, जागतिक सम्बन्ध तो नहीं।" उक्त मातृवाणी से ही हम अनुमान कर सकते हैं कि दीदी की माँ के साथ कितनी घनिष्ठता थी।

दीदी के चरणों में श्रद्धाञ्जलि निवेदन करने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ है। उस तेजः पुञ्जमयी उज्ज्वल ज्योतिष्कस्वरूपा दीदी को मेरे जैसे अल्पज्ञ का श्रद्धाञ्जलि अर्पण करना, सूर्य को प्रदीप दिखाने के समान ही हास्यकर होगा यह तो मैं जानती ही हूँ, तथापि शास्त्रों में कहा गया है कि महान् व्यक्तियों का चरित्र-वेद के समान ही पवित्र होता है। अतः परम पूजनीया दीदी के जीवन-वेद से कुछ मन्त्रों को अपनी लेखनी द्वारा लिख कर निजमन को पवित्र कर रही हूँ। जिस प्रकार भक्त गंगा से जल लेकर, उसी जल से गंगा की पूजा करते हैं, उसी प्रकार मैं भी दीदी के पवित्र चरित्रसागर में अवगाहन कर उस अतल गभीर पालन वारिधि से कुछ रत्नों को संगृहीत कर दीदी के चरणों में अर्पण कर रही हूँ।

दीदी मातृभक्त परिवार में श्री गुरुप्रिया देवी या 'दीदी' नाम से ही परिचित हैं। 'गुरुप्रिया' नाम माँ का दिया हुआ है, यह तो मैं पहले ही उल्लेख कर चुकी हूँ। दीदी नाम भी माँ का ही दिया हुआ है। हमलोगों ने सुना हैं कि माँ के जन्म के पूर्व, माँ की एक बहन जन्म के कुछ दिन बाद ही स्वर्ग सिधार गईं थीं। गुरुप्रिया दीदी को देखकर माँ ने कहा था कि "यह मेरी वही दीदी है।" अतः माँ उन्हें दीदी कहने लगीं, और सभी मातृभक्तों की भी वे अति आदरणीया दीदी हो गई। माँ पहले दीदी को 'खुकुनी' कहकर भी पुकारतीं थीं। माता-पिता का दिया हुआ नाम 'आदरिणी' था। हमलोग उन्हें 'दादाभाई' कहते हैं। यह नाम श्रद्धेया मौनीमा ने दिया था। मौनीमा ने उस समय के कन्यापीठ की लड़कियों से कहा था कि तुमलोग गुरुप्रियादी को 'दीदी' कहकर क्यों पुकारती हो? दीदी क्या साधारण महिला जैसी है? कर्मक्षेत्र में महिला तो नहीं, कोई पुराण भी दीदी की समता नहीं कर सकता है। कारण दीदी है सक्रिय कार्य ब्रह्म तथा माँ है निष्क्रिय कारण ब्रह्म। माँ के ख्यालों को दीदी ही कार्यरूप में परिणत करतीं हैं। अतः तुमलोग 'दीदी' को 'दादाभाई' कहा करना। तभी से कन्यापीठ की लड़कियाँ दीदी को

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'दादाभाई' कहती हैं। दीदी छोटों के लिए 'दादा' तथा बड़ों के लिए 'भाई' यहीं इन दोनों का सम्मिलित रूप ही 'दादा भाई' है।

१३०५ शकाब्द ३० माघ, (सन् १८९९, फरवरी के मध्य) शनिवार शुभ मुहूर्त में ढाका जिला के अन्तर्गत राजदीया ग्राम निवासी, तत्कालीन आसाम के सिलचर जिले में सरकारी अस्पताल के उच्चपदस्थ सिविलसर्जन श्रीशशाङ्क मोहन मुखोपाध्याय की पंचम सन्तान के रूप में सिलचर में ही दीदी का जन्म हुआ। शैशवावस्था से ही दीदी में अन्य बच्चों की अपेक्षा कुछ विलक्षणता प्रकट होने लगी। माता-पिता की अतिप्रिय कन्या आदरिणी धीरे-धीरे बड़ी होने लगीं। दीदी से बड़े चार भाई-बहन तथा छोटे पाँच थे। परन्तु दीदी के प्रति सभी का सबसे अधिक स्नेह था।

बाल्यकाल से ही दीदी की सांसारिकता के प्रति त्याग का भाव प्रस्फुटित होने लगा। साधारणतः लड़कियों की अपने शरीर की सजावट के प्रति बहुत ही रुचि देखी जाती है। परन्तु दीदी शैशव से ही इस ओर बिलकुल ध्यान भी नहीं देतीं थीं। साबुन तथा तेल कभी नहीं लगाती थीं। प्रायः कंघी नहीं करती थीं। कभी-कभी उनकी माँ बलपूर्वक उनके बालों में कंघी कर देती थीं। इसके लिये उन्हें कितनी ही डांट पड़ती थी, परन्तु उनको कोई परवाह नहीं थी। हमलोगों ने बाद में दीदी के मुँह से भी सुना कि दीदी कभी अपने बालों में कंघी नहीं करती थीं। इसके लिए उनके बालों में जूँ पड़ गई थी। बचपन से ही वे स्तवस्तोत बहुत पाठ करती थीं। जब पाठ करने बैठती थीं तब उनके बालों में से जूँ निकल कर शरीर पर गिरने लगती थीं, दीदी उनको पकड़ कर फेंक देती थीं। मारती नहीं थीं। कारण मारने से पाठ के समय हिंसा होगी। इसप्रकार दीदी त्याग तथा तितिक्षा की जाज्वल्यमान प्रतीक थीं।

त्यागमूर्ति दीदी

धीरे-धीरे शिशुकन्या आदरिणी, ग्यारह वर्ष की एक किशोरी बालिका के रूप में अपने नैसर्गिक सौन्दर्य तथा स्वभाव सिद्ध त्याग वैराग्यादि गुणों से पूर्ण विकसित कमल की भाँति खिल उठीं। पिता शशाङ्कमोहन कन्या के विवाह के लिए चिन्तित हुए। परन्तु विवाह किसका ? आजन्म तपस्विनी कन्या आदरिणी ने विवाह का पूर्णरूप से विरोध किया। परन्तु पिता ने तत्कालीन सामाजिक नियमकानूनों को देखते हुए, कन्या की इच्छा के विरुद्ध ही ढाका के रायबहादुर सुरेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय के सुयोग्य कनिष्ठ भ्राता श्री उपेन्द्रकिशोर वन्द्योपाध्याय के

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया। परन्तु वह विवाह केवल तत्कालीन सामाजिक नियमों के अनुसार एक संस्कारमात्र था। कारण शशाङ्कबाबू की कन्या आदरिणी कभी पतिगृह नहीं गईं। उन्होंने पतिका मुँह तक नहीं देखा। दीदी ने इस विषय में हमलोगों से भी कहा है—"मैं बचपन में बहुत ही लजालु लड़की थी। पुरुष अथवा स्त्री किसी अपरिचित व्यक्ति को देखते ही पलंग के नीचे या आलमारी के पीछे छिप जाती थी। जब माता-पिता बहुत डाँट-डपट कर भी मुझे ससुराल न भेज सके तब वे मेरी समवयस्का मेरी ही कुछ बान्धवियों को मुझे समझाने के लिए भेजने लगे। वे सखियाँ मुझे आकर कहती थीं—"तुम्हें लज्जा नहीं आती? इतनी बड़ी हो गई हो। विवाह हुआ है। फिर भी तुम माता-पिता के पास ही रहती हो?" तब मैं भी उन्हें कहती थी कि तुम लोगों को लज्जा नहीं आती? जिन माता-पिताओं ने जन्म दिया है, अपने अपार स्नेह तथा वात्सल्य से लालन-पालन कर इतना बड़ा किया है उन्हें छोड़, एक अपरिचित व्यक्ति के साथ उनके घर जाती हो? इससे तुमलोगों को ही लज्जा आनी चाहिए।" यह सुनकर वें सब हंसती हुई चली जाती थीं। इस प्रकार दीदी त्याग तथा पवित्रता की साकार मूर्ति थीं। त्याग ही मानों विग्रह धारण कर इस धरती पर आया था। जिस समय के समाज की आलोचना कर रही हूं, तत्कालीन समाज में कन्याएँ विशेषतः सम्पन्न घर की कन्याओं का इस प्रकार पतिगृह न जाकर स्वाधीन भाव से धार्मिक जीवन व्यतीत करना कोई स्वप्न में भी नहीं सोच सकता था। तब (आश्रम) यह शब्द भी खूब प्रशंसासूचक नहीं था। अतः यह विचारणीय है कि स्वभावतः लज्जाशीला उस किशोरी को तत्कालीन समाज के विरुद्ध कदम उठाने का साहस कहाँ से मिला? क्या इसी से स्पष्ट नहीं हो जाता कि दीदी जन्मसिद्ध संन्यासिनी थी तथा उनका व्यक्तित्व एक तेजस्वी पुरुष जैसा था? सर्वप्रथम दीदी ने ही अपने आचरण से तत्कालीन समाज को यह दिखा दिया कि कन्याएँ गृहस्थाश्रम में न जाकर भी स्वाधीन भाव से त्यागमय जीवन व्यतीत कर सकती हैं। बाद में श्री श्री माँ के पास आकर माँ के आदेश से दीदी ने अपने बालों को कटवा लिया तथा राम-रज-रंजित वस्त्र धारण कर पूर्ण रूप से ब्रह्मचारिणी हुईं। आज जो हमलोग इस धर्ममय जीवन रूप महाव्रत के व्रती हुए हैं, इसकी सृष्टिकर्त्री दीदी ही थी। वे ही हमारे इस धर्म महापथ की प्रथम पथप्रदर्शिका थीं। तभी तो दीदी के महाप्रयाण पर माँ ने हमसे कहा "तुमलोग क्यों रो रही हो? तुमलोगों

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

को तो दीदी ने ही रखा है। तुम लोग तो दीदी की ही सृष्टि हो। तुम लोगों के मध्य ही मैं दीदी को देख रही हूं।" कन्याओं के लिए दीदी द्वारा प्रवर्तित इस आदर्शमय जीवन को आज अन्य आश्रमों में भी ग्रहण किया गया है। इसप्रकार त्यागमूर्ति दीदी के त्यागमय पूर्व जीवन की अति अल्पचर्चा की गई है। इसके बाद श्री श्री माँ के पास आकर तो वे और भी कठोर जीवन व्यतीत करने लगीं।

साहित्यानुरागिणी दीदी

कन्या आदरिणी को पूर्णरूपेण संसार से विरक्त देखकर माता-पिता ने भी कन्या को ससुराल भेजने के लिए और अधिक आग्रह नहीं किया। पिता शशाङ्क बाबू ने अपनी प्रिय कन्या को संसार का सम्पूर्ण दायित्व सौंपकर पूर्ण रूप से निश्चिन्त हो गये। कन्या भी अर्थात् निपुणता से संसार की परिचालना करने लगीं। माता-पिता की सेवा, अपनी माँ की घर के प्रत्येक कार्य में सहायता करना तथा अपने छोटे भाई-बहनों का अति यत्नपूर्वक लालन-पालन करना, ये सभी कार्य दीदी अति निष्ठापूर्वक करने लगीं। छोटे-छोटे भाई-बहन भी दीदी से बड़े अन्य भाई-बहन रहते हुए भी दीदी को ही "बड़दी" कहते थे। सांसारिक कार्यों को सम्पन्न करने के बाद समय मिलने पर दीदी बंगसाहित्य के अच्छे-अच्छे ग्रन्थों का अध्ययन करती थीं। घर में ही लाइब्रेरी थी। यद्यपि दीदी तत्कालीन सामाजिक नियमानुसार विद्यालय की पढ़ाई अधिक दूर तक नहीं कर पाईं, तथापि बंगसाहित्य में ऐसा ग्रन्थ कम है, जो दीदी ने न पढ़ी हो। वे हमें बंगाल के सुप्रसिद्ध गीतकार अतुल प्रसाद, राम प्रसाद, द्विजेन्द्र लाल राय आदि के गीतों को बहुत ही सुन्दर ढंग से आवृत्ति कर सुनाती थीं। उनकी स्मरणशक्ति असाधारण थी। बंकिम, शरत, नवीन, हेम— सभी साहित्य उनको कंठस्थ था। हमें उनके श्रीमुख से कवीन्द्ररवीन्द्र की बहुत सी कविताओं की आवृत्ति सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वे कविताओं की बहुत ही सुन्दर ढंग से आवृत्ति करती थीं।

एक बार दीदी ग्रीष्मावकाश पर काशी में थीं। उनके दो मंजिलें के घर में रोज हम दोपहर को उन्हें घेर कर बैठते थे। वे हमें 'सञ्चयिता' से एक के बाद एक कविता सुनाती रहती थीं। वे रवीन्द्रनाथ की 'देव-तार ग्रास' शीर्षक कविता इतने करुणरसधारा में प्लावित हो सुनाती थीं कि हम सबकी आँसू बहने लगते थे। "जूता आविष्कार", "पूजार-साज", "गान्धारीर आवेदन", कर्ण-कुन्ती-संवाद", दुई विद्याजनि",

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"पुरातन भृत्य"—ये कविताएँ बहुत सुनाती थीं। हम भी मन्त्रमुग्ध हो सुनते थे। दरवेशजी के 'मन्दिर' से भी बहुत सी कविताएँ सुनाती थीं। विशेषतः मुझे दीदी से कविता सुनने में बहुत ही प्रसन्नता होती थी। यह दीदी भी जानती थीं। अतः दीदी को जब भी कोई कविता याद आ जाती थी मुझे सुनाने के लिए याद कर रखती थीं, या पास में जो कोई भी होता था, उसे कहती थीं "याद दिला देना, गीता को यह कविता सुनानी है।" एक बार कुछ दिन के लिए माँ मुझे पूना में दीदी के पास छोड़ आईं थीं। मैं ही रात को दीदी के पास सोती थी। तब रात को दीदी करीब दो ढाई बजे तक मुझे कविता सुनाया करती थीं। मैं भी अपनी एक छोटी सी कापी में कुछ-कुछ कविताएँ नोट कर लिया करती थी। इसके बाद ऐसा हो गया कि दीदी के घर न सोने से मुझे नींद नहीं आती थी। मैं रात को अन्य घर से उठ कर दीदी के पास जाकर कहती थी "दीदी भाई मुझे नींद नहीं आ रही है।" तब दीदी कहती थी 'तू यहीं सो जा।' इस प्रकार दीदी की असाधारण स्मृति शक्ति की तथा कविता-आवृत्ति की अपूर्व प्रतिभा का सामान्य परिचय दिया गया। दीदी में साहित्य सृजन की भी अपूर्व प्रतिभा थी। दीदी ने ही सर्वप्रथम श्री श्रीमाँ की दिव्य लीलानय जीवन कथा का सहज सरल बंगभाषा में लिपिबद्ध कर माँ के लीलामय चरित्र को जगत् के सामने प्रकाशित किया। सत्रह खण्डों में प्रकाशित श्री श्रीमाँ आनन्दमयी ग्रन्थावली—मातृभक्तों को दीदी की यह अमूल्य देन है। इसके लिए मातृ भक्तगण दीदी के चिरऋणी रहेंगे।

दीदी का प्रथम मातृदर्शन

सन् १९२५ को दीदी का मातृ वियोग हुआ। अब वे अपने छोटे भाई बहनों का अपनी माँ के समान लालन-पालन करने लगीं। पिता की सेवा भी करती थीं। उसी समय शाहबाग में भी श्री श्रीमाँ आयीं। शशाङ्क बाबू मित्रों से माँ के विषय में सुनकर माँ का दर्शन करने आये। बाद में अपनी पुत्री का भी आग्रह देखकर उन्हें भी माँ के दर्शनार्थ ले आए। माँ प्रथम दिन ही दीदी को देखकर बोलीं "तुम इतने दिन कहाँ थीं।" दोनों ने ही दोनों को अति परिचित की भाँति देखा। इसके बाद धीरे-धीरे पिता पुत्री दोनों ने हीं श्री श्रीमाँ की दुर्निवार आकर्षणी शक्ति से आकृष्ट हो, गृहत्याग कर दिया। पिता शशाङ्क मोहन ही उत्तरकाल में मातृ भक्त परिवार में "स्वामी अखण्डानन्दगिरि" नाम से परिचित

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हुए तथा पुत्री प्रसिद्ध हुईं "दीदी गुरुप्रिया" नाम से। वे धनी-दरिद्र, शिक्षित-अशिक्षित, साधारण-असाधारण सभी की आदरणीया 'दीदी' थीं।

सेवा की प्रतिमूर्ति दीदी

माँ के पास आने के बाद दीदी ने अपने आप को पूर्ण रूप से माँ के चरणों में समर्पित कर दिया। सम्प्रति मातृ सेवा ही उनका एकमात्र लक्ष्य था। माँ की प्रसन्नता ही उनकी प्रसन्नता थी। और माँ की वाणी उनके लिए वेदवाक्य थी। माँ के आदेश का अक्षरशः पालन ही उनका प्रधान उद्देश्य था। भाईजी के बाद दीदी के चले जाने से ऐसा प्रतीत होता है कि बिना सोचे माँ के निर्देशों का पालन करने वाला कोई नहीं रह गया। पहले तो इतने लोग नहीं थे, केवल दीदी ही अकेली माँ की समक्ष सेवा करती थीं और इतने पर भी माँ के पास आने वालों के लिए स्वयं भोजन बनाकर खिलाती थीं। दीदो के सदृश माँ की निष्काम सेवा करने वाली सम्प्रति हम लोगों के बीच बहुत विरल है। उन्होंने प्राणपण से माँ की सेवा की, किन्तु कुछ भी प्रतिदान नहीं चाहा। इसी लिए माँ ने उन्हें अपनी अहैतुकी कृपाधारा से सराबोर कर दिया।

कर्मयोगिनी दीदी

यदि दीदी को आदर्श कर्मयोगी कहा जाय तो कोई भी अत्युक्ति न होगी। दीदी के पाँच श्रेष्ठ कीर्ति स्तम्भ हैं—श्री श्रीमाँ आनन्दमयी आश्रम, श्री श्रीमाँ आनन्दमयी कन्यापीठ, श्री श्रीमाँ आनन्दमयी विद्यापीठ, श्री श्रीमाँ आनन्दमयी सेवा चिकित्सालय तथा श्री श्रीमाँ आनन्दमयी संघ। कितने आयासपूर्वक वाराणसी के आश्रम का निर्माण दीदी ने किया इसका परिचय माँ की वाणी से मिलेगा—"यह जमीन कितने कष्ट तथा बिघ्न बाधाओं के बाद मिल सकी। इस आश्रम के लिए सब कुछ दीदी ने ही किया। एक दिन, यह शरीर उस पार जब नौका में रहता था, शरीर अस्वस्थ था, और उल्टी का भाव था। स्वामीजी इस पार दुध लेने आते थे। यह जगह दीदी को बहुत पसन्द आई। लेकर ही छोड़ेगी। पैसों की कोई व्यवस्था नहीं थी। किसी ने कागज में मोड़ कर २०-२५ हजार रुपये दिये। दीदी उसे कपड़े में लपेट कर तथा बिस्तर में बांध कर ट्रकपर चढ़ गई और यह भी ध्यान नहीं दिया कि पास में कौन बैठा है। यहाँ आकर उन्होंने कहा कि इस बिस्तर में ही वह चीज है। मैंने बिस्तर की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जिससे कोई समझा न सके। ऐसी कर्मठ थीं। लड़कियों में ऐसी कर्मठता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नहीं देखी जाती। बासन्ती देवी (चितरंजन दास की पत्नी) इस लड़की (दीदी) को चाहती थीं। बहुत से लोग ऐसी कर्मी लड़की को चाहते थे। दीदी अपना काम करके चली गईं। साधुओं के लिए आश्रम एवम् कन्याओं के कल्याणार्थ विद्यास्थान। दीदी जो कन्याओं का भला चाहती थीं। माँ की वाणी से ही स्पष्ट हो गया कि दीदी कितनी कर्मनिष्ठ थीं। कितने कष्ट से उन्होंने कन्यापीठ का निर्माण किया। एतदर्थ उन्होंने दरवाजे-दरवाजे जाकर धन संग्रह किया। बड़े-बड़े मातृभक्त पूँजींपति-बिड़ला, डालमिया, सिंहानिया, जैपुरिया इत्यादि दीदी को अपनी बड़ी बहन के समान आदर एवम् प्रेम देते थे। दीदी को भी बड़ी बहन के अधिकार से उनको कन्यापीठ के लिये कपड़ा, कम्बल, बिस्तर आदि देने के लिये आदेश देने में लेश भाव भी लज्जा का अनुभव नहीं होता था। उनके तिरोधान से सचमुच हमलोगों ने अपना अभिभावक खो दिया हमलोग एकाएक एक साथ ही स्नेहमय माता पिता के स्नेह से वंचित हो गये। माँ के चरणों में हमारी विनीत प्रार्थना है कि हमें दीदी के अभाव को सहन करने की शक्ति प्रदान करने की कृपा करें। दीदी ने कन्यापीठ की निष्काम सेवा की है। माँ के उज्ज्वल आदर्शों का बीजारोपण यदि एक भी लड़की के भीतर हो सका तो उनकी यह सेवा सार्थक होगी।

एकबार दीदी गोपाल मन्दिर वाले घर में बैठीं थीं। मैंने वहाँ जाकर उनसे कहा कि "दादाभाई! कन्यापीठ को सम्भालने के लिये कई लड़कियों की जरूरत पड़ती है। लड़कियाँ तो पढ़कर घर चली जाती हैं। इसलिये आप यह नियम बना दीजिये कि जो शास्त्री और आचार्य पढ़ेंगी उसे कन्यापीठ में ही रहना होगा।" यह सुनते ही दीदी जोर से बिगड़ उठीं कि माँ के पास रह कर तुमने यही सीखा? माँ का कन्यापीठ है, माँ ही देखेंगीं। मैं तो माँ के कथनानुसार कुमारियों की निष्काम सेवा करती हूँ। माँ की कृपा से पढ़ लिख कर लड़कियाँ बड़ी होती हैं। वे रहें या जायँ, यह उनकी इच्छा पर निर्भर है।" ऐसी थी दीदी की निष्काम कर्म के प्रति निष्ठा। दीदी के अस्वस्थ होने पर भी उन्हें कार्यभार सौंप कर माँ निश्चिन्त हो जाती थीं। हमलोगों ने कितने बार देखा कि वे मोड़े पर बैठ कर हजारों लोगों को खिला रहीं हैं। माँ के कथनानुसार कभी-कभी दीदी खाना भी बनाती थीं। वे बक्सों में अलग-अलग नाम लिखकर चीजें सजाकर रखती थीं। उनकी स्मरणशक्ति इतनी अद्भुत थी की हम लोगों के पूछने पर तुरन्त बता देती थीं कि कौन सी चीज

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कहाँ रखी है ? कल क्या-क्या करना है अथवा माँ से कहना है इसे वे पहले दिन ही रात को लिस्ट बना कर रख लेती थीं। और दूसरे ही दिन उसे पूरा करती थीं जिससे माँ के आदेश पालन में कोई त्रुटि न रह जाय। जब किसी काम के लिये दीदी कहतीं तो असुविधा होने के कारण हमलोग दूसरे दिन पूरा करने का आग्रह करते थे। तब वे जोर देकर कहती थीं—'नहीं, आज और अभी होगा।' "कल करै सो आज करै। आज करै सो अब ॥ पल में परलय होगा, बहुरि करैगो कब ?" कबीर का यह दोहा वे अक्सर सुनाया करती थीं।

छोटी-छोटी सी चीज की, यहाँ तक कि कागज या रस्सी के टुकड़े तक को, सम्भाल कर रखने की अभ्यस्त थीं और सयय पर उनका उपयोग कर लेती थीं।

उनका भोजन और वस्त्र बहुत सादा था। चावल के साथ मूँग की पतली दाल और उबले आलू अथवा आलू की भुजिया उनका प्रिय भोजन था। साबुदाना भी उनका प्रिय भोज्य पदार्थ था। मोटी धोती के ऊपर कमर में एक चद्दर बाँध लेना ही पर्याप्त था। इससे पता चलता है कि वे जन्मसिद्ध वैरागिणी थीं।

दीदी को परनिन्दा अथवा आलोचना बिल्कुल ही रुचिकर नहीं थी। वे कहती थीं कि तुम लोग परनिन्दा के स्थान पर माँ की बातें करो। उन्हें असत्यभाषण से भी चिढ़ थी।

स्नेहमयी दीदी

जब मैं आश्रम में आई तो दीदी अस्वस्थ हो गई थीं। यही कारण है कि उनका कर्मठ रूप हमारे सामने उद्भासित नहीं हुआ किन्तु उनके वात्सल्यजन्य प्रेम से हम सदैव आप्लावित रहे। सुना था कि वे बहुत क्रोधी स्वभाव की थीं। किसी के ऊपर जब वे क्रोध प्रकट करती थीं तो सभी भयभीत हो जाते थे, किन्तु उसके क्षमा माँगते ही वे इतनी दयार्द्र हो जाती थी कि जैसे कुछ हुआ ही नहीं। अत्यन्त निकट से परिचित लोग कहते थे कि दीदी तो नारिकेल फल के समान है कि ऊपर से कठोर और भीतर से पानी के समान सरल।

दीदी उन्हें ही ज्यादा मानती थीं जो माँ से प्रेम करते थे और माँ की बात मानते थे। गरीब और दुःखियों के प्रति उनको सहज सहानुभूति थी। इस विषय में माँ ने कहा है "एक बार दीदी भिक्षा करके इस शरीर के पास आ रही थी। इतने में रास्ते में किसी ने आकर दीदी से कहा कि उन्हें सात दिनों से कुछ खाने को नहीं मिला है। दीदी के पास

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जो भी कुछ था सब उन्हें दे दिया। और कोयला इत्यादि के लिये कुछ रुपये देकर कहा कि तुम लोग सब कुछ लाकर, खाना बना करके खा लेना। बस दीदी चली आईं। फिर एक बार भी यह नहीं सोची कि वे प्रशंसा करेंगे। उनके लिये कुछ किया यह बात ही दीदी के मन में नहीं आई। दीदी को करना था कर आई।" ऐसी थी दीदी की गरीबों के प्रति सहानुभूति कितने ही निराश लोगों को उन्होंने नौकरी दिलायी थी। उनके स्नेह का प्रसाद पाने के लिए परिचित होना आवश्यक नहीं था। काम में व्यस्त रहने के कारण हमलोगों का ध्यान खाने-पीने की ओर नहीं रहता था, दीदी जहाँ किसी का सूखा मुख देखती थीं तुरन्त फल, दूध आदि की व्यवस्था चुपचाप कर देती थीं। यही नहीं, घूमने की इच्छा होने पर वे हमलोगों को सुन्दरस्थान देखने के लिए भेज देती थीं, समय-समय पर उनके हाथ से पेन, घड़ी, टार्च आदि वस्तुएँ हमलोगों को स्नेह प्रतीक के रूप में मिला करती थी। लेकिन दीदी कह देती थी कि "यह तुम्हारे मुँह को देखकर नहीं दिया गया बल्कि तुम्हारी जो माँ के प्रति श्रद्धा है उसका यह फल है।" तात्पर्य यह है कि माँ से प्रेम करने वाले ही उनके प्रिय थे। वे सदैव प्रसन्न चित्त रहती थीं और उनके पास जाने वाला दुःखी व्यक्ति भी प्रसन्न हो जाता था।

कहावत है कि वृद्धावस्था बाल्यावस्था का पुनरागमन होता है। दीदी इसकी साक्षात् उदाहरण थी। उनकी मधुर मुस्कान और व्यवहार शिशुसुलभ हो गया था।

अपूर्व सहन शीलता

दीदी में अपूर्व धैर्य तथा सहनशीलता थी। दीर्घ बीमारी तथा असह्य पीड़ा में भी कभी उनके मुँह से "आह" शब्द नहीं सुना गया। वे पूर्णरूप से माँ के ऊपर निर्भर थीं। यही कारण है कि सबके कहने पर भी यहाँ तक कि हरिबाबा आदि महात्माओं के कहने पर भी वे माँ से कभी रोग मुक्ति की प्रार्थना नहीं करती थीं। परमकरुणमयी माँ भी अन्तः सलिला नदी की भाँति उन तक कृपावारि पहुँचाती थीं और अन्तिम समय में उन्हें स्वयं मुक्तिक्षेत्र काशी में ले आईं।

बहुत समय पूर्व सर्वप्रथम जब दीदी अस्वस्थ हुईं तो उनकी चिकित्सा की बातचीत चल रही थी। उन्हें कहाँ रखा जाय यह समस्या थी। इसी समय मातृभक्त श्री वी० के० शाह ने आग्रह पूर्वक दीदी का चिकित्सा भार अपने ऊपर लेने को उत्कण्ठित हो उठे। योग्य व्यक्ति देखकर माँ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ने दीदी का हाथ उनके हाथ में देते हुए कहा कि यह तुम्हारी बहन है। अपनी इच्छा के अनुसार इनकी चिकित्सा करो। तब से भैया जी ने ही उनकी चिकित्सा करायीं। उनके समान भाई होना दुर्लभ है। जिन्होंने अपनी धर्म-बहन के लिए अपना सब कुछ समर्पित कर दिया।

दीदी की अत्यन्त अस्वस्थता का समाचार सुनकर माँ बम्बई गयीं और दीदी की हालत खराब देखकर उन्हें लेकर १४ सितम्बर को काशी आ गयीं। दूसरे दिन माँ ने दीदी को देखकर वृन्दावन जाते समय उनके पूरे शरीर का स्पर्श किया और मस्तक आदि को भी स्पर्श किया और जो कुछ माँ को करना था, सम्पन्न कर पुनः वृन्दावन चली गयीं।

दीदी की अवस्था का ध्यान करके १६ सितम्बर को साढ़े तीन बजे की ब्राह्मबेला से ही भागवत, गीता, विष्णुसहस्रनाम आदि का पाठ, जप, ध्यान, रामायण पाठ, कीर्तन आदि प्रारम्भ हो गया। तुलसीदी, चन्दनदी, गंगादी, मालादी, दीदीजी आदि कन्यापीठ की सभी बड़ी लड़कियाँ अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार दीदी की महायात्रा को सुगम बनाने में संलग्न थीं। नीचे गोपाल मन्दिर में छोटी लड़कियाँ कीर्तन कर रही थीं। धीरे-धीरे दीदी अपनी महायात्रा को पूर्ण करती हुई श्री श्री माँ के चरणों में लीन हो गयीं। सारा आश्रम परिवार शोकभिभूत हो उठा। सब कुछ सूना हो गया और संसार की असारता मानों साकार हो गयी। दूसरे दिन पूजा—अर्चना के पश्चात् दीदी के पार्थिव शरीर को जल समाधि दे दी गई। किन्तु उनके स्मृति स्वरूप उनकी यशः काया चिरकाल के लिए हमारे साथ है जो हमें हमेशा प्रेरित करती रहेगी।

श्री रामचन्द्र के लक्ष्मण, श्रीकृष्ण के बलराम, चैतन्य के नित्यानन्द तथा श्रीरामकृष्ण परमहंस के विवेकानन्द की भाँति श्री श्री माँ की भी लीला सहचरी के रूप में दीदी इस धरती पर आई थीं। अपना काम समाप्त कर चली गयीं। तभी तो माँ ने भी कहा "जो काम के लिए आते हैं, वे काम करके चले जाते हैं। वे अपेक्षा नहीं करते हैं कि हमारे लिए यह होगा, वह होने वाला है इत्यादि। जिनकी पुनरागमनवृत्ति है, वे लटके रहते हैं। दीदी तो इस शरीर के काम के लिये आई थी। काम करके चली गई।" मातृवाणी के द्वारा ही मैं अपने क्षुद्र निबन्ध को समाप्त करती हूँ। अन्त में माँ तथा दीदी के चरणों में प्रणाम करते हुए यही प्रार्थना करती हूं कि दीदी का जो आदर्श था, जो लक्ष्य था वह हमारे जीवन में प्रतिफलित हो। ■

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दीदी गुरु प्रिया

—श्री कान्तानन्द—

दीदी जैसी महापुरुषों के विषय में कहना तो छोटी सी नाव के द्वारा महासागर को पार करने के समान है विशेष कर मेरे लिये—

"तितीर्षुं दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्"

पृथ्वी का सर्वश्रेष्ठ खण्ड भारतवर्ष है। यह हमारे ऋषियों-महर्षियों की जन्म भूमि है। हमारे वेदों-पुराणों और धर्मशास्त्रों में इसका गान किया गया है। विष्णु पुराण तथा भागवत में इसके महत्व का विशेषरूप से उल्लेख है। यह वह पवित्र देश है जहाँ देवता भी जन्मग्रहण करने के लिये लालायित रहते हैं। इस खण्ड में भी परमपवित्र खण्ड है—बँगला देश। यहाँ श्री स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, चैतन्य महाप्रभु तथा आनन्द का साक्षात् स्वरूप माँ आनन्दमयी का जन्म भी बँगलादेश में ही हुआ है।

प्रभु जब इस पृथ्वी पर अवतरित होते हैं तब अपने साथ अपने सहचरों को भी ले आते हैं। जब प्रभु राम का अवतार हुआ था तो वे शेषनाग को लक्ष्मण के रूप में साथ लाये थे। इसी प्रकार कृष्ण और अर्जुन को भी नरनारायण का ही अवतार माना जाता है।

परमपूज्य माँ के अवतार के साथ ही परमपूज्य परमश्रद्धेया असामान्य मातृभक्त, कर्मयोग की साकार मूर्त्ति करुणा की सागर, विनम्रता की विमूर्त निःस्वार्थ प्रेम की प्रतीक; सेवा की आदर्श दीदी सादे जीवन उच्चविचारों की मूर्त्तिमान स्वरूप थीं।

दीदी का दर्शन सर्वप्रथम मुझे सन् १९७० में भागीरथी के परम पावन तट पर जयपुरिया हाऊस हरिद्वार में हुआ था। दीदी के चेहरे पर एक अलौकिक व्यक्तित्व था, जो कि साधारण लोगों में नहीं होता। दीदी ने मुझसे कहा कि कहो माँ को देखकर तुमको कैसा प्रतीत हुआ? दीदी ने बताया कि कई लोग माँ को साक्षात् जगदम्बा मानते हैं। मैंने जो कहा वह अब कहने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु दीदी का माँ के प्रति जो अनन्य प्रेम था; वह तो हम मातृ-भक्तों को विदित है दीदी की तुलना हम लक्ष्मण से कर सकते हैं। वनगमन के समय लक्ष्मणजी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रीरामचन्द्रजी की सेवा जिस प्रकार करते थे, उनके सोने पर सोना; उठने से पहले ही उठना आदि, ठीक उसी प्रकार से दीदी भी माँ की सेवा सर्वदा करती थीं, सेवा का न तो विज्ञापन होता है और न दुकान ही खुलती है। सेवा सेवक का सहज स्वभाव होता है जो दीदी के अन्दर निरन्तर देखा जाता रहा है। जब तक दीदी थीं, दीदी की सेवा का अभिप्राय था—अपने पास जो कुछ भी साधन सामग्री है, तन; मन, धन, विद्या, बुद्धि, शक्ति वह सब मातृ सेवा के लिये समर्पित थी। दीदी का अपना मानकर कोई वस्तु नहीं थी। यद्यपि आज हम जो कुछ देख रहे हैं, विशाल आश्रम, चिकित्सालय जिसमें दीन-दु:खियों की सेवा शुश्रूषा की जाती है, कन्याओं के जीवन निर्माण का आश्रयस्थल विद्यालय यह सब दीदी की ही अमर कीर्ति का गुणगान करता रहेगा। महापुरुष जो बीज बोया करते हैं, वह सर्वथा फलता-फूलता रहता है। महामना मालवीयजी ने विश्वविद्यालय बनाया तो इतना विस्तृत नहीं था, आज इसके अन्दर कितने विभाग हैं, दीदी का निर्माण किया हुआ कन्यापीठ चार बालिकाओं से प्रारम्भ हुआ था, आज वह पी-एच० डी० तक पहुँच गया है जहाँ देश के कोने-कोने से बालिकाएँ आती हैं। केवल बंगलादेश से ही नहीं आतीं हैं, अपितु नेपाल, पंजाब, गुजरात, उत्तर प्रदेश से आती हैं। ये बालिकाएँ दीदी का ही दूसरा स्वरूप हैं।

मुझे एक घटना याद आ गयी। जब मुझे दीदी के पास सोने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तो दीदी ने बताया कि जब वे छोटी थी, तभी से ही अपने घर का सम्पूर्ण कार्यभार सम्भालती थी। दीदी के छोटे बहन भाई उन्हीं को अपनी माँ के समान मानते थे। उन दिनों दीदी की छोटी बहन आयी हुई थी। उन्होंने बताया कि एक दिन मैं और मेरी बहन ऊषादी स्कूल से लौट रही थीं तो ऊषादी को अपनी सखी के घर जाना था। वे बेलूदी को भी ले गयीं और कहा कि तुम घर जाकर दीदी से मत कहना। बेलूदी मान गयी। परन्तु देर हो जाने के कारण दीदी समझ गयीं कि कहीं पर घूमकर आयी हैं। इस प्रकार गरजकर पूछा जैसे सिंह शावक गरजता है। बेलूदी ने तो डरकर बता दिया कि दीदी मुझे कुछ मत कहो मुझे तो ऊषादी ले गयीं थी। बेलूदी छोड़ दो गयीं, ऊषादी को एक कोने में खड़ा कर दिया गया। दीदी का व्यक्तित्व बचपन से ही दूसरे लोगों से अलग था। जब दीदी घर पर थीं तो घर के लोग दीदी का सम्मान करते थे। जब आश्रम में आयीं तो यहाँ भी मातृभक्तों में माँ के बाद दीदी का स्थान हो गया। विद्यालय के लिये दीदी ने भिक्षा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कर के धन इकट्ठा किया। परोपकार के लिये भिक्षा माँगने में भी उनको संकोच नहीं होता था, पूज्य नारायण स्वामीजी ने बताया कि अब तो यह सिस्टम है कि माँ के पास कम लोग जायें तो अच्छा है। परन्तु दीदी का यह तरीका था कि जो मातृभक्त बने उनको दीदी अवसर प्रदान करती थीं। एक बार देहरादून के आश्रम में भैया विकेशाजी उनकी पत्नी लीला बहन आये हुए थे। माँ ने मुझे उनके लिये फल की कच्ची चटनी, अच्छे प्रकार की मिठाई भैया को देने के लिये कहा। इस प्रसंग में भैया ने बताया कि बहन मैं जो आज माँ का इतना प्रिय बन सका हूँ, वह सब पूज्य दीदी की ही महती अनुकम्पा का फल है जो मैं कभी नहीं भूल सकूँगा।

इसी प्रकार सिंहानिया, जयपुरिया आदि भी माँ के समान उन्हें भक्ति करते थे। इसका प्रधान कारण यही था कि दीदी के माध्यम से ही उनको मातृदर्शन हुए। माँ क्या वस्तु हैं, इसकी जानकारी भी मातृः भक्तों को दीदी के अथक परिश्रम स्वरूप दीदी द्वारा लिखी गयी पुस्तकों से हो रही है। यदि दीदी उस समय मातृलीला का वर्णन नहीं करतीं तो क्या आज हम उन मातृ लीलाओं का अध्ययन करके आनन्द ले पाते? इसका श्रेय पूज्य दीदी को ही है।

एक बार दीदी ने सिंहानिया से कहा कि क्यों भाई, आप जो लड़कियों को कपड़ा भेजते थे, वह क्यों नहीं भेजा? उन्होंने कहा दीदी भेज देंगे। दीदी ने कहा कि भेज देंगे नहीं, जो नहीं भेजा है, वह भी साथ भेजना। फलस्वरूप दोनों बार के कपड़ों का पार्सल एक साथ आया। दीदी को देखकर यह प्रतीत होता था कि ब्रह्माजी ने दीदी का निर्माण करते समय बहुत पुरुषों के पौरुष को एकत्र करके ही दीदी को बनाया था। कोई साधारण व्यक्ति इस तरह से नहीं कह सकता। दीदी का व्यक्तित्व दूसरे लोगों से अलग ही रहा था। एकबार मिसेस गोयंका वासन्ती-पूजा के अवसर पर दीदी के दर्शन करने दीदी के कमरे में गयीं। प्रणाम करने के बाद बोलीं—दीदी आपका स्वास्थ्य कैसा है? दीदी ने कहा, बहुत ठीक नहीं है। तुम कन्यापीठ में कुमारी-सेवा के लिये रुपया भेजतीं थीं, वह ठीक से भेज रही हो? उन्होंने कहा कि दीदी छः महीने से बाकी पड़ा है। तीन महीने का देकर जाऊँगी; बाकी जाकर भेज दूँगी। दीदी ने कहा कि जब तक माँ यहाँ है, तुम लोग रहो। घर पर पत्र लिख दो ताकि वे लोग मनिआर्डर भेज दें। उन्होंने दीदी के कमरे में बैठकर पत्र लिखा। पूज्य दीदी को प्रतिपल यह ध्यान रहता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

था कि कन्यापीठ में किसी प्रकार का अभाव उत्पन्न न हो। उसकी तुरन्त पूर्ति करती थी।

बच्चों के लिये गरम शाल नहीं है; कम्बल नहीं है। क्या किया जाये ? कार्य कर्त्ताओं ने विचार किया और दीदी को लिखा। कुछ दिनों बाद देखा गया कि गरम शाल और कम्बल आ गये हैं। कोई साधारण मनुष्य भला इस तरह से कहेगा ? अन्य लोगों को यह प्रतीत होगा कि इससे हमारा मान सम्मान नष्ट हो जायेगा। दीदी गरीब या साधारण परिवार की नहीं थीं। बड़े घराने होते हुए भी दीदी को संकोच क्या चीज है; यह नहीं जानती थी। दीदी को प्रथम दर्शन में देखकर ही माँ ने कहा था कि तुम इतने दिन कहाँ थी ? जैसे स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने स्वामी विवेकानन्दजी को देखकर कहा था 'अरे नरेन्द्र तू अब तक कहाँ था ?

दीदी तथा माँ का सम्बन्ध तो अलौकिक है जो आज भी है और आगे भी रहेगा। यह सम्बन्ध तो शारीरिक नहीं, आत्मीक है। आत्मा अजर अमर है, वह कभी मरता और जन्मता नहीं, जैसे गीता में कहा गया है—

वांसासि जीर्णानि यथा विहाय, नवाति गृह्णाति नरोपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा, न्यन्यानि संयाति नवानि देही।

अर्थात् मनुष्य जैसे पुराने वस्त्र को त्याग कर दूसरे नये वस्त्रों को धारण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीर को त्याग कर दूसरे नये शरीर को प्राप्त होता है।

दीदी तो माँ के कार्य के लिए आयी थीं। उनका कार्य सम्पन्न हो गया तो दींदी माँ के स्वरूप में ही विलीन हो गयीं। दीदी को कर्म के प्रति कितनी लगन थी जिन्होंने इसे देखा है वे ही जानते हैं। दीदी की अपनी कोई आकांक्षा नहीं थी, माँ का कार्य है इसलिए लगनपूर्वक करती थीं। जैसे—

कर्मण्येवाधिकारस्ते माँ फलेषु कदाचन्।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्माते सङ्गोऽस्त्व कर्मणि॥

दीदी में सर्वदा यह भाव देखा जाता था कि वे कर्म निरन्तर करती थीं, परन्तु कभी यह नहीं सोचती थीं कि इसके बदले में किसी फल की प्राप्ति हो।

एक बार शक्तिदा से टंककाल कराना था। वे पानूदा से बातें कर रही थीं। पहले मुझे शक्तिदा को बुलाने के लिए भेजा, फिर बानीदी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आ गयीं तो उनसे कहा—'ये बानी शक्ति के डाक' इसी बीच में चिन्मय-दा आ गये तो उनसे भी यही कहा कि शक्ति को जल्दी से बुलाओ। कहने का मतलब यह है कि दीदी को जो कार्य दिया जाए, वह तुरन्त कर देती थीं।

दीदी की स्थिति इस प्रकार की थी जैसे कमल पानी में रहता है, परन्तु पानी कमल को भिगाता नहीं, एक बूँद पानी भी कमल पर गिर जाये तो वह ठहर नहीं सकता, अपने आप नीचे गिर जाता है। स्वामीराम कहा करते थे—

न हर भूलों न जग छोड़ो कर्म कर जिन्दगानी में।
रहो दुनिया में यों जैसे कमल रहता है पानी में।।

यह श्लोक पूर्णतया दीदी के चरित्र में घटता था। जब दीदी माँ के पास से आया करती थीं तो एक बज जाया करता था। माँ जो काम दीदी को बताती थीं सबसे पहले वह किसी कागज पर नोट करती थीं, फिर अपना काम करती थीं। दीदी गुणी गणों का विशेष सम्मान करती थीं। दीदी का वात्सल्य प्रेम हम कभी नहीं भूल सकेंगे। हमारी परम-पूज्य परमाध्यक्ष स्वनामधन्य श्री श्री १००८ स्वामी गुरुप्रिया आनन्दगिरि जी महाराज़, ज़िनको हम दीदी कहकर पुकारा करते थे, वे ही दीदी आनन्दमयी माँ की संस्थाओं को सफल मार्गदर्शन कराकर अपनी पार्थिव यात्रा को समाप्त करके परमज्योति में समा गयीं।

दीदी की कर्तव्यनिष्ठा, सरलता, त्यागभावना और सबके प्रति प्रेम की उदार भावना चिरस्मरणीय रहेंगी। दीदी के महान् सुकृत् तथा आत्मीयता से ओत-प्रोत दीदी का आदर्श जीवन अध्यात्म जगत् के इतिहास का एक स्वर्णिम अध्याय रहेगा। दीदी जैसी लोक-हितकारी महामना के श्रीचरण-कमलों में अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करती हूँ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परम आदरणीया दीदी के प्रति श्रद्धाञ्जलि

—कु० गुणिता पी-एच० डी०—

निर्मल शरदाकाश, दुग्धधवल चाँदनी की दिगन्त व्यापी लहरें, धरती का शान्त, स्निग्ध, सौम्य मधुर हास, भागीरथी का स्नेह सुशीतल वक्षस्थल, मन्दाकिनी गंगा के तट पर देव-मन्दिरों की श्रेणी के अन्तिम प्रान्त में तुषार धवल अत्यन्त साधारण, परन्तु अति कमनीय नाति दीर्घ मन्दिर शिखर अचानक दृष्टि ही नहीं, साथ ही साथ चित्त को आकर्षण कर लेता है। केवल मन्दिर-शिखर ही नहीं, हरियाली के बीच स्वर्ण-मन्दिर-शिखर का दर्शन भी होता है तथा दक्षिण की दिशा में एक विशाल भवल, शुभ्र तथा शान्त विषय-विलास से दूर मलयज-शीतल पवित्र निर्मल, माता गंगा के स्नेह आँचल में स्थित मंदिर-शिखरों से युक्त यह भवन मन में चाञ्चल्य की सृष्टि करता है। प्रश्नों की उत्पत्ति होती है। उसके समाधान के लिये दृष्टि इधर-उधर जाती है, बड़े-बड़े अक्षरों में अंकित "श्री श्री माँ आनन्दमयी आश्रम" नाम पट्ट पर। कितना मधुर यह नाम है। वास्तव में ही आनन्दमय परिवेश में आनन्द कानन में माता भागीरथी के तट पर विश्वविश्रुता जगज्जननी माता आनन्दमयी का यह आश्रम धन्य है, धन्य हैं, इसके वासी। इतने से मन शान्त नहीं होता। जिज्ञासा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। किसकी यह कीर्ति है ? किसकी महत् तपस्या का फल है ? यह किसकी उदार-भावना के औदार्य से सैकड़ों आश्रमवासी धन्य हो रहे हैं ? संत-महात्मा अपने योग्य आश्रय पाकर अहरह किसे आशीष दे रहे हैं ? मन्दिर के शंख-घड़ियाल देवमहिमा के साथ अपनी अवस्थिति के कारण स्वरूप किसकी अक्षय कीर्ति को दिशाओं में फैला रहे हैं ? स्नेह समुज्ज्वला माँ आनन्दमयी के अक्षय-प्रेम का स्नेह का पात्र कौन है ? किसके द्वारा भुवन-मोहिनी श्री श्री माँ का यह मनोमुग्धकारी आश्रम निर्मित हुआ है ?

"श्री श्री गुरुप्रिया देवी" यही नाम कानों में गूँजता है। आँखों के सामने तेजोदीप्त शुद्धब्रह्मचारिणी मूर्ति, चारों ओर "दीदी" "दादा भाई" इत्यादि आत्मीय मधुर सम्बोधन, क्या रहस्य है इसमें ? रहस्य तो नाम में ही प्रकाशमान है। मातृस्वरूपिणी, गुरुरूपिणी माँ का ही दिया हुआ यह गुरुप्रिया नाम, तभी तो यह महान् कार्य, महान् उद्देश्य उस महिम-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मय नामधारिणी द्वारा ही सिद्ध हो सका। "गुरुप्रिया" इस शब्द में कितना स्नेह, कितनी सर्वस्वगुणसमर्पण की भावना है, तभी तो गुरुप्रदत्त यह नाम धन्य है।

सन् १९४२ सितम्बर का महीना। शरदागमन की तैयारी में प्रकृति तत्पर। अपराह्न की मधुर वेला में एक नाव धीर मन्थर गति से पतित-पावनी गंगा के पश्चिम तट की ओर चली आ रही है। रामनगर के घाट से नाव चली हैं। नौका पर आरोही हैं चार जन। परम पूजनीया श्री श्री माँ, अनन्य सेविका गुरुप्रिया देवी, पू० स्वामी परमानन्द महाराज तथा पू० स्वामी नारायणानन्द तीर्थ, जानकी घाट से उत्तर की ओर एक विशाल स्थान खाली पड़ा हुआ है घास-फूस, जंगल तथा कुछ खंडहर हैं। श्री श्री माँ अंगुली निर्देश द्वारा कहती हैं—"यह स्थान कैसा है ? माँ की यह छोटी-सी बात, बस, फिर मौन, इस छोटे से वाक्य में जो महान् निर्देश है, जो गूढ़ उद्देश्य है उसे तो केवल वे ही समझ सकत हैं जिन्हें माँ समझाना चाहती हैं। तत्काल ही गुरुप्रिया दीदी माझी से पूछ उठती हैं कि यह स्थान किसका है ? कैसा है ? क्या है ? मल्लाह से उत्तर पाकर, उसी के कहे अनुसार द्वितीय दिन से उस स्थान को प्राप्त करने में तत्पर हो उठती हैं। आरम्भ होता है उनके महान् जीवन के कर्मयोग का महान् अध्याय।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण के अन्तिम पाद में १८९८ ई० में पुण्य माघी संक्रान्ति के शुभ लग्न में श्री श्री गुरुप्रिया दीदी का शुभ आविर्भाव आसाम के सिलचर जिले में हुआ था। आपके पू० पिता तत्कालीन सिलचर में कार्यरत सिविलसर्जन श्री शशाङ्कमोहन मुखोपाध्याय के नाम से विख्यात थे। आप पूर्व बंगाल के ढाका जिले की राजदिया ग्राम की सभ्रान्त ब्राह्मण वंश की कन्या थीं। धर्मप्राणा-माता तथा मद्धौदार्य-सम्पन्न पिता के घर में ऐसी महत्-प्राणा का जन्म सम्भव था। आपके पू० पिता उत्तर जीवन में पू० अखण्डानन्द गिरि के नाम से परिचित हुए। उत्तर जीवन में आपकी अतुलनीय साधना तथा अपूर्व त्याग साधना के जीवन में एक अनुपम आदर्श रखता है। पिता कन्या दोनों को ही माँ भागीरथी गंगा के प्रति तीव्र आकर्षण था। गुरुप्रिया देवी का पूर्व नाम "आदरिणी देवी" था। बाल्य-काल से ही ये भिन्न प्रकृति की थीं। उपनिषद् की महिमामयी वाणी को अपने जीवन में प्रतिफलित कर इन्होंने वर्तमान समाज को एक नवीन दिशा दी। "मातृदेवो भव" माता के प्रति यह महान् आदर-भाव आपके जीवन में

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दृष्टिगोचर होता है। जब तक आपकी गर्भधारिणी माता जीवित थीं तब तक आपने अपना सब कुछ माता को ही माना। माँ ही आपकी सर्वस्व थीं। साहित्य में आपकी अद्‌भुत रुचि थी, माता की सेवा, परिवार जनों की सेवा तथा स्वाध्याय यही इनका जीवन था। युवावस्था में पदार्पण करने के साथ ही आपकी माता का स्वर्गवास हो गया। इससे आपके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा, पर विधि के विधान में निर्मम सत्य को स्वीकार करना ही पड़ता है अतः अपनी बुद्धि विचक्षणता से इन्होंने अपने को सँभाल लिया।

एक बार दीदी के पू० पिता जी ने दीदी को श्री श्री माँ का संवाद दिया। तब श्री श्री माँ कुलवधू ही थीं। बाहरी परिचय अधिक नहीं था। बाबा भोलानाथ जी के किसी परिचित के द्वारा दीदी के पू० पिता जी को माँ की दिव्य भावमय लीला-कथाओं की बात ज्ञात हुई। पू० पिता जी तो धर्मप्राण थे ही अतः उन्होंने उनके मन में मातृ-दर्शन की लालसा जगी और उन्होंने स्वभाव से ही धार्मिक अपनी कन्या को भी यह संवाद देने में विलम्ब न किया। श्री श्री गुरुप्रिया देवी के शब्दों में—'मैंने उनको कभी नहीं देखा, पर न जाने उनको देखने के लिये मेरे मन में न जाने कैसी तीव्र अभिलाषा हुई। न जाने ऐसा लगा कि मानो वह मेरी कितनी परिचित हैं।' श्री श्री माँ को देखकर आप कहती हैं, 'मेरे मन में आया कि यह मेरी अपनी हैं और मुझे प्रथम बार देखकर माँ ने ऐसा व्यवहार किया कि न जाने मैं कितनी परिचित हूं। आखिर मुझे ऐसा हुआ कि माँ को न देखकर मैं रह नहीं सकती थी। सोचती थी कब जाऊँगी उनके पास।' श्री श्री माँ को भी सहचरी के रूप में एकनिष्ठ धर्मप्राणा सेविका प्राप्त हुई। आरम्भ हुआ आपके जीवन का नवीन अध्याय। माँ के पास आना-जाना घनिष्ठतर होने लगा। माँ की दिव्य लीलाओं में दिव्य मधुर भावों के दर्शन में तथा इस महाभाव की महावस्था में माँ की सेवा का सम्पूर्ण अधिकार आप ही को प्राप्त हुआ। यहाँ तक कि स्वयं बाबा भोलानाथ भी माँ के महाभाव की अवस्था में माँ के सान्निध्य में जाने का साहस नहीं करते थे। जब कि आप सदा सर्वदा माँ के सान्निध्य में ही निर्विकार चित्त से रहा करते थे।

इसी बीच आपके पू० पिता जी ने कार्य से अवकाश ग्रहण किया। स्त्री वियोग तो पहले से ही हो चुका था आपके पू० पिताजी के मन में वैराग्य की चिनगारी तो जल रही थी अतः श्री श्री माँ से इस ओर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उत्साह पाकर सम्पूर्ण भोग-विलास त्याग कर माँ के ही निर्दिष्ट स्थान सिद्धेश्वरी में साधना-रत रहने लगे। गुरुप्रिया दीदी को पिता की सेवा के बहाने गृहत्याग का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। मानो इष्ट की प्राप्ति हो गई। इस प्रकार आप सर्वदा श्री श्री माँ के संग रहने लगीं रात्रि में सिद्धेश्वरी जाकर पिता के समीप निवास करती थीं।

इस समय से श्री श्री माँ के लीलामय दिव्यजीवन में किंचित् परिवर्तन परिलक्षित होता है। श्री श्री माँ के व्यवहारिक बाह्यिक कार्य प्रायः छूट ही गये। माँ के दिव्य देह में सदा सर्वदा दिव्य भावों के लक्षण प्रकट रूप से प्रकाशमान होने लगे। भोजन कराना, नित्य व्यावहारिक सेवा का महान् अधिकार, महान् अधिकारिणी को ही प्राप्त हुआ। धन्य हो गया आपका जीवन।

समय बीतता गया, दिव्य आनन्द के स्रोत में गुरुप्रिया दीदी का जीवन सागर हिलोरें लेने लगा। श्री श्री माँ के दिव्य जीवन की दिव्य आभा विच्छुरित होने लगी। साथ ही साथ दीदी का कार्य-क्षेत्र विस्तृत होने लगा। पूर्व बंग छोड़ माँ ने उत्तराखंड में प्रवेश किया। सर्वप्रथम हिमाचल की रम्य उपत्यका देहरादून, रायपुर माँ के पदार्पण से धन्य हुआ। वहीं पर सर्वप्रथम एक महान् संस्था की सूचना हुई। हिमाद्रि के मसूरी क्षेत्र में भक्त परिकर श्री श्री माँ एकदा भ्रमण कर रही थीं। पास में मिशनरी पाठशाला थी। बाहर मैदान में बालक-बालिकाएँ खेल रहे थे। घण्टी की ध्वनि सुनाई पड़ी। साथ ही साथ क्रीड़ारत बालक अदृश्य हो गये। माँ ने जिज्ञासा की कि सब कहाँ गये? इसका उत्तर माँ के परम भक्त श्री भाई जी (ज्योतिषचन्द्र राय) ने दिया— 'सब अपनी-अपनी कक्षा में चले गये।' माँ ने कहा—"तुम लोग इस प्रकार का कुछ कर नहीं सकते हो?" माँ के इस छोटे से इंगित को भाई जी तथा गुरुप्रिया देवी के संकल्प तथा कार्यनिष्ठा ने श्री श्री माँ आनन्दमयी विद्यापीठ तथा श्री श्री आनन्दमयी कन्यापीठ का रूप प्रदान किया।

श्री श्री माँ आनन्दमयी कन्यापीठ आपका साक्षात् स्वरूप है। प्रथमतः १९३८ में हिमाचल के पवित्र अंचल हरिद्वार के जान्हवी तट पर होम आदि के द्वारा तीन कन्याओं को लेकर इस संस्था का शुभारम्भ हुआ। यहाँ की कन्याओं को ब्रह्मचारिणी की वेश-भूषा में विभूषित करना, उन्हें ब्रह्मचर्य की दीक्षा के साथ सब प्रकार की शिक्षा से शिक्षित कर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उत्तम चरित्र निर्माण कर अपने जीवन को सार्थक करना, यही उनका संकल्प था। उनका स्वतः संकल्प तो था ही नहीं, केवल श्री श्री माँ के दिव्य भावों को निदर्शनों को यथासाध्य पूर्ण करना ही उनका उद्देश्य था। माँ के संरक्षण में उन्होंने जिस प्रकार का वेश धारण किया, वही यहाँ की कन्याओं को भी दिया। माता के स्नेह तथा पिता के अनुशासन द्वारा आपने इसे पालन किया, पर सर्वदा मातृ छाया में अपना सर्वस्व अधिकार त्याग कर। धन्य है यह महान्। आप परहिताय यह विशाल त्याग महाभारत के भीष्म पितामह के महान् चरित्र की याद दिलाती है। सम्पूर्ण जीवन निर्विकार रहकर इस महान् कुरू साम्राज्य का पालन पितामह ने ही किया था। आज के इस युग में श्री श्री माँ के इस विशाल साम्राज्य रूपी संग का पालन ठीक उसी निर्लित भावना से गुरुप्रिया दीदी ने कर दिखाया।

वाराणसी में कृत तीन वर्ष व्यापी महा सावित्री यज्ञ आपके ही परिश्रम का फल है। एक मात्र मातृचरणों में अखंड विश्वास रूपी सम्पद् लेकर आपने इस महान् कार्य की आरम्भ किया तथा अन्त में दशसहस्र ब्राह्मण भोजन तथा कई कोटि आहुति द्वारा उसकी पूर्णाहुति हुई।

एक बार श्री श्री माँ आपको विन्ध्याचल में छोड़ गईं। उस समय मातृदर्शना भाव आपको असह्य था, पर मातृ आदेश पालन अनिवार्य है अतः मातृलीलाओं की स्मृति चारणा द्वारा आपने अपने दुःख को कम करने का प्रयास किया। उसी प्रयास के फल स्वरूप 'श्री श्री माँ आनन्दमयी' नामक ग्रन्थ कई भागों में हमारे सामने उपस्थित हैं। आपका कर्मक्षेत्र महान् था। कर्ममय था आपका जीवन। संसार की यात्रा में हुए यात्रियों के यात्रा का अन्त अनिवार्य है। यहाँ तक कि विश्वात्मन् परमात्मा भी जीवोद्धारार्थ यहाँ आते हैं तब उन्हें भी अपने नित्य लीला मय जीवन में यवनिकापात करना पड़ता है। उनके पार्षदों के लिए भी यह अनिवार्य है। घटना साधारण ही है, एक बार श्री श्री माँ काशीस्थ आश्रम में थी। बिजली के तारों की गड़बड़ी से सम्पूर्ण दीवारों में विद्युत प्रवाह चल रहा था, माँ का हाथ दीवार में न लगे इसी कारण दीदी ने स्वीच (बटन) बन्द करने के लिये हाथ बढ़ाया तथा दीवार पर हाथ रखते ही आप एक झटके साथ जमीन पर गिर पड़ी। साथ ही साथ आपके महान् कर्ममय जीवन पर पर्दा। बाद में जब आपको बम्बई के विज्ञ चिकित्सकों को दिखाया तो उन्होंने कहा कि गिरने से आपके भीतर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

खराबी आ गयी है। यद्यपि आप अस्वस्थ रहती थीं, परन्तु जीवन के अन्तिम क्षण तक आश्रम के कण-कण में प्राण संचार करती रहीं। श्री-श्री माँ के चरणों में शरण लेने की प्रेरणा परम हितैषीं की भाँति सबको देती रहीं।

दीदी की अस्वस्थ अवस्था में २५ अगस्त को दिल्ली से बम्बई ले जाया गया। दीदी के रवाना होने के बाद माँ वृन्दावन रवाना हो गईं। ११ सितम्बर को दीदी का संवाद प्राप्त कर माँ तत्काल बम्बई रवाना हुई। बम्बई में जाकर उनकी चिकित्सा साध्यातीत है जानकर उसी दिन आपको काशी लाने का विचार किया तथा विज्ञ चिकित्सकों की देख भाल तथा स्वयं माँ के संरक्षण में आपको काशी लाया गया। बम्बई से जब दीदी को लेकर माँ रवाना हो रहीं थीं उस दिन गणेश चतुर्थी की पुण्यतिथि थी। चारों ओर विघ्नविनायक की शोभा यात्रा निकल रही थी। माँ ने कहा—'यहीं तो यात्रा का समय'।

काशी में दीदी की व्यवस्था कर माँ उसी दिन वृन्दावन के लिए रवाना हुईं। बम्बई से आने के बाद आपमें बाह्यिक बोध का अभाव परिलक्षित हो रहा था, पर चेहरे पर दिव्य शान्ति थी।

१६ सितम्बर मुक्ताभरण सप्तमी की पुण्यतिथि ब्राह्ममुहूर्त में आपकी साँस की गति विपरीत हुई। हिचकियों आने लगीं। आपकी स्नेह धन्या कन्यापीठ की कन्याएँ आपको घेरे हुए थीं। आपकी एकटक दृष्टि सामने लगी हुई श्री श्री माँ के चित्र में माँ के चरणों के प्रति लगी हुई थी। क्या ही अपूर्व दृष्टि थी। शारीरिक कष्ट का लेश मात्र नहीं था। अपने लक्ष्य पर स्थिर धीर निर्निमेष नेत्रों से मातृ चरणारविन्द का मधुपान, अनुपम स्वाद, अवर्णनीय अनुभूति।

प्रभात की वेला, गंगा का तट, नन्दनन्दन का देवालय, मातृनामोच्चारण, गीता के मन्त्रोंसे व्याप्त वातावरण, चिकित्सकों की असाध्य साधन की अन्तिम चेष्टा, सन्त महात्मा, तपस्विनी कन्या-कुमारियों के मध्य, चिरतपस्विनी, शुद्ध ब्रह्मचारिणी, तेजस्विनी गुरुप्रिया देवी की महान् आत्मा अपने आराध्य में लीन हो गई। माँ के शब्दों में—"दीदी ने जिस लक्ष्य को लेकर गृहत्याग किया था उसी को पूर्ण कर दिखाया। चिरजीवन लक्ष्य पर स्थिर धीर अटल, अचल।"

श्री श्री माँ वृन्दावन में उपस्थित भागवत्-सप्ताह का पंचम दिवस। श्रीकृष्ण के जन्म अवसर पर आरति हो रही है। माँ बोल उठीं—"दीदी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चली गईं" सब अवाक्। तत्क्षण संवाद पहुँचा गुरुदेवी का महानिर्वाण। धन्य है जिसकी समस्त गतिविधि का सूक्ष्मावलोकन माँ सैकड़ों कोश दूर से करती हैं, यही तो सम्भव है इस क्षेत्र में।

वाराणसी में माँ के आगमन का संवाद पहुँचा। आपके शरीर को पुष्पमाल्यों से विभूषित कर बर्फ आदि के द्वारा सुरक्षित रखा गया।

भोर के तीन बजे माँ पधारीं। श्री श्री माँ अपने कक्ष में चली गईं। जिनकी अमर आत्मा सदा सर्वदा विराजमान है, माँ के सान्निध्य में जिनका नित्य सम्बन्ध है माँ से। उनके नश्वर देह के अवलोकन का प्रयोजन माँ के लिए प्रयोज्य प्रतीत नहीं होता। उपस्थिति आवश्यक है, ताकि उस महान् आत्मा के नश्वर-देह का अन्तिम सत्कार पूर्ण रूप से हो।

आश्रम के प्रांगण में आपका शरीर लाया गया। ब्रह्मचारिणियों द्वारा पूजा-अर्पण की गई। भागीरथी के पूतपवित्र तट पर आपका शरीर रखा गया। स्नान आदि कराये गए। नवीन वस्त्रों से सुसज्जित कराया गया। ब्रह्मचारिणी कुमारी कन्याओं ने माल्यार्पण किया। चारों ओर शंख घड़ियाल की ध्वनि 'हरहर महादेव, काशी विश्वनाथ गंगे' की उदात्त रव से दिग्मण्डल गूँज उठा। धूप के पवित्र गंध से दिशाएँ व्याप्त हो उठी। "गुरुप्रिया आनन्दगिरि जी" की जयध्वनि।

उधर प्रभात की शुभ वेला, गगनमण्डल पर बालसूर्य उदीयमान, गंगा का स्थिर धीर उदार वक्षस्थल। यहीं पर एक दिन इस विशाल कर्मजीवन का सूर्योदय हुआ था और आज यहीं उसका बाह्यिक सूर्यास्त।

बजरे पर आपका पूत शरीर चढ़ाया गया। गंगा के वक्षस्थल में एक महान् विभूति के परित्यक्त नश्वर शरीर को वहन कर यह काष्ठ नौका चल रही है, अन्त में भागीरथी जान्हवी जननी के स्नेह अंक में यह शुद्ध पवित्र क्षणभंगुर नश्वर देह सदा के लिये विलीन हो गया अमरकीर्ति सूर्य-किरणों के साथ ही साथ दिगन्त में फैली, अजर-अमर आत्मा मातृ-चरणों में लीन हो गयी। माँ के शब्दों में—"दीदी इस शरीर के काम के लिए आई थी, काम हो गया, दीदी चली गई।"

धन्य है यह महान् जीवन, चिरवन्दनीय, चिरनमनीय, हे महान् आत्मा, वन्दना स्वीकार करो।

●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वार्षिक सूची-पत्र

सप्तविंश वर्ष : जनवरी से दिसम्बर, १९८० ई०

विषय	संख्या १	२	३	४
१. मातृ-वाणी	१	५९	११५	१८१
२. नाम में भगवान—स्वामी रामदास	३			
३. मातृ-लीला—अनुवादक प्रकाश माथुर	६			
४. श्रीकृष्ण कीर्तन की महिमा —रामनरेश दीक्षित	१९			
५. परम पथ का क्रम —म० म० गोपीनाथ कविराज	२३			
६. सौरोपासना—शिवानन्द	३३			१९४
७. 'अहम्' स्वाभिमान और मर्यादा —श्वेताम्बरी सहगल	३६			
८. श्री श्री माताजी के मुखारविन्द से दो आशा की वाणी —स्वामी नारायणनन्द तीर्थ	४६			
९. श्री माँ आन्दमयी स्तुति —श्री द० व० योगशास्त्री	५०			
१०. 'हरिकथा ही अमृतकथा है—	५१			
११. शोक संवाद—	५६			
१२. श्री श्री आनन्दमय माँ —श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी		६१		
१३. श्री श्री आनन्दमयी मातुः ८५ तम जन्मोत्सवे मातृपूजा—श्री चित्तरञ्जन मुखोपाध्याय		६७		
१४. श्री श्री माता आनन्दमयी—रामेश्वर सहाय		६९		
१५. लीला लहर—उर्मिला मनहोत्रा		७२		
१६. निष्काम कर्म (योग वाशिष्ट)		७४		
१७. योगः एक आलोचनात्मक विवेचना —हरिओम् सिंह		७५		

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

१८. वेदों में भक्तिरस—कृष्णबिहारी मिश्र शास्त्री ८०
१९. जीवन मूल्य—डॉ० श्वेताम्बरी सहगल ८९
२०. श्री श्री मातृ पद वन्दनम्
—श्री परेशनाथ मुखोपाध्याय ९५
२१. नमो राम कृष्णाय—श्री नारायण सेनगुप्त ९६
२२. माँ वाणी वन्दना—श्री कमला कान्त १०२
२३. माँ की आध्यमिक श्रेष्ठता
श्री नलिनी कान्त ब्रह्म १०३
२४. धर्म-ज्ञान-वैराग्य-ऐश्वर्यमयी
श्री श्री आन्दमयी माँ—स्वामी स्वतन्त्रानन्द १२० १३५
२५. "धन्य है जवाला पुत्र सत्यकाम"— ११७
२६. वर्तमान जगत् की श्री श्री माँ आनन्दमयी
का अवदान—कु० गौरी बनर्जी १२१
२७. श्री श्री जगज्जननी माँ आनन्दमयी
........पुष्पाञ्जलि १२७
२८. श्री माँ के सान्निध्य में वासन्ती पूजा
—कुमारी जया भट्टाचार्य १२९ २१५
२९. श्री श्री माँ की जीवन-लीला
—स्वामी अखण्डानन्द (उत्तर काशी) १३२
३०. श्री श्री माँ आनन्दमयी भजन— १४८
३१. योग मार्ग में ज्योति
—म० म०गोपीनाथ कविराज १४३
३२. अनुकम्पा धारा—(श्री चरण कमलाश्रिता) १५१ २०४
३३. दर्शन-समीक्षा—हरिओम् सिंह १६३ २२७
३४. आह्वान ज्योति का—कु० श्वेताम्बरी सहगल १७७
३४. उपनिषद् विद्या : भारतीय जीवन-दर्शन
—डॉ० मुनीश्वर झा १८३
३६. सूक्ष्मतत्त्व—डॉ० श्वेताम्बरी सहगल १८९
३७. नैमिषारण्य की एक झलक
—कु० गौरी बनर्जी १९७
३८. आरोप साधन—म०म० गोपीनाथ कविराज २१७
३९. कुम्भ महापर्व—कुमारी जया भट्टाचार्य २३८

■

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Revised Price-List of various Publications and Articles available with

SHREE SHREE ANANDAMAYEE CHARITABLE SOCIETY

PUBLICATIONS DIVISION

EZRA MANSIONS, 10, GOVT. PLACE EAST, CALCUTTA-700 069
Phone ; 23-1211

A. *BOOKS* :

ENGLISH

1.	Mother as Revealed to me —"*Bhaiji*"	Rs. 10/- or $ 2 or Sh. 18
2.	Mother as seen by Her Devotees	Rs. 10/- or $ 2 or Sh. 18
3.	Sad Vani	Rs. 3/- or $ 1 or Sh. 6
4.	Matri Vani (Sayings) Vol. I	Rs. 3.50 or $ 1 or Sh. 6
5.	—Do— Vol. II	Rs. 5.50 or $ 1½ or Sh. 10
6.	Words of Sree Anandamayee MA	Rs. 10/- or $ 3 or £ 1 Sh. 10
7.	MA Anandamayee Lila —*Sri Hari Ram Joshi*	Rs. 20/- or $ 3.00 or £ 1 Sh. 6
8.	A Mystic Sage—MA Anandamayee—*Shyamananda Banerjee*	Rs. 20/- or $ 3 or £ 1 Sh. 6
9.	Anandamayee MA —*N. Chowdhury*	Rs. 8/- or $ 1½ or Sh. 12
10.	From the life of Anandamayee MA—*Bithika Mukherjee*	Rs. 20/- or $ 3 or £ 1 Sh. 6
11.	Anandamayee MA's Inscrutable Kheyal—*Anil Ganguly*	Rs. 5/- or $ 1½ or Sh. 12

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

HINDI

1.	Matri Darshan—"*Bhaiji*"	Rs.	5.00
2.	Sad Vani	Rs.	2.00
3.	MA Anandamayee—*Dr. Pannalal* ...	Rs.	5.00
4.	Akhanda Mahayajna—*Gurupriya Devi* ...	Rs.	2.50
5.	Kirtan-Rasa-Swarupa	Rs.	10.00
6.	Stava-Sankirtan-Arati	Rs.	2.00
7.	Amar Vani—compiled by *Br. Virjananda* ...	Rs.	10.00
8.	Matri Vani	Rs.	2.50
9.	Sri Sri MA Anandamayee—*Gurupriya Devi* Vols. I to XX each Vol.	Rs.	8.00

* (Vol. No. III is out of print at present)

N.B. Those purchasing 10 Vols. or more at a time of this particular book will be entitled to a special rebate of 10% in price.

GUJRATI

1. MA Anandamayee-Ke-Sannidhyame
   —*Swami Bhagavatananda* Vol. I Rs. 8.00
   Vol. II (out of stock)
   Vol. III Rs. 10.00

BENGALI

1.	Matri Darshan—"*Bhaiji*"	Rs.	5.00
2.	Sad Vani	Rs.	2.00
3.	Matri Vani	Rs.	3.00
4.	Akhanda Mahayajna—*Gurupriya Devi* ...	Rs.	2.50
5.	Kirtan-Rasa-Swarupa	Rs.	10.00
6.	Stava-Sankirtan-Arati	Re.	1.00
7.	Namawali—*Ganga Samiran*	Re.	1.00

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

8. Shree Shree Ram Gita
   —*Swami Narayanananda Tirtha* ... Rs. 2.50
9. Dikshiter Krishnapuja —Do— ... Rs. 1.50
10. Vivek Churamani —Do— ... Rs. 3.50
11. Ajnata Bana Kusum
    (Life history of 9 Saints) —Do— ... Rs. 3.00
12. Brahmanu Chintanam—Translated
    from the original book by Adi
    Sankaracharya) —Do— ... Rs. 3.00
13. Santan Batsala Sri Sri MA
    Anandamayee —Do— ... Rs. 18.00
14. —Do— Vol. II —Do— ... Rs. 12.00
15. Mahamahopadhya Doctor Gopinath
    Kabiraj Mahashayer Punya Jibaner
    Sankhipta Anudhyan —Do— ... Rs. 2.00
16. Sono Bali Mayer Katha—*Sailesh Brahmachari* Rs. 5.00
17. Swakriya Smarasamrita—*Brahmacharini*
    Chandan Puranacharya Part—I ... Rs. 6.00
18. —Do— Part—II ... Rs. 7.00
19. Bhaijir Dwadash Vani ... ... Re. 1.00
20. Mayer Lila Katha—*N. Chowdhury* ... Rs. 5.00
21. Sri Sri Muktananda Giri Maharaj
    —*Sri Anil Chandra Gangopadhyaya* ... Rs. 1.50
22. Amar Vani—compiled by *Br. Virjananda* ... Rs. 15.00
23. Sri Sri MA Anandamayee—*Gurupriya Devi*
    Vol. I to XVII each Vol. ... Rs. 8.00

    N.B. Those purchasing 10 Vols. or more of this particular book, at a time will be entitled to a Special rebate of 10% in price.

QUARTERLY JOURNALS

ANANDA VARTA—Published simultaneously in three languages—English, Bengali & Hindi (January, April, July & October).

Single copy—Rs. 4/- each

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Rate of annual subscription including postage :

In India—One language Rs. 12/-

Foreign (Including Europe & America)

By Sea Mail ... $ 4.00 or £ 2.00 or Rs. 32/-
By Air Mail ... $ 8.00 or £ 3.50 or Rs. 64/-

The payment should be made in the name of "SHREE SHREE ANANDAMAYEE CHARITABLE SOCIETY" (A/C. PUBLICATIONS DIVISION) by M.O. or Bank Draft only on any Calcutta Bank and not by cheque to avoid Bank-Charges and unnecessary delay in encashment.

B. *PHOTOS & LOCKETS* :

1. PHOTOS, according to sizes and quality ranging from Re. 1.00 to Rs. 50.00 each.
2. LOCKETS, according to sizes and quality ranging from Re. 1.00 to Rs. 12.00 each.
3. Steel chains for the Lockets—Rs. 0.75 each.

N.B. The revised prices as above will be effective from 1.2.1981

The above books & materials can be had of :

1. PUBLICATIONS DIVISION,
   Shree Shree Anandamayee Charitable Society,
   31, Ezra Mansions, 10, Govt. Place East,
   Calcutta-700 069. Phone : 23-1211
2. ALL BRANCH CENTRES / ASHRAMS OF
   SHREE SHREE ANANDAMAYEE SANGHA.
3. M/S. GLOBE LIBRARY (P) LTD.,
   Book Sellers & Publishers,
   2, Shyama Charan Dey Street, Calcutta-700 073.

G. N. ROY
On behalf of
Publications Division

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Postal Regd. No.
ĀNANDA VĀRTĀ January, 1981 W. B/CC/156

Registered with the Registrar of Newspaper under No. 4727/57
CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi